ओ३म्

सत्यार्थप्रकाश
का
प्रभाव

लेखक

स्वर्गीय स्वा० वेदानन्द (दयानन्द) तीर्थ

संस्थापक

विरजानन्द-वैदिक-संस्थान

प्रथमावृत्ति २०००

विक्रमसम्वत् २०१६

मूल्य १)

ओ३म्

प्रस्तावना

अपने देहावसान से कुछ समय पूर्व 'स्वमन्तव्यामन्तव्यप्रकाश' में ब्रह्मा से लेकर जैमिनिपर्यन्त महाशय महर्षियों के मन्तव्यों (जिनको वह भी मानते थे) का प्रकाश करते हुए स्वामी दयानन्द ने लिखा है :—

"सर्वशक्तिमान् परमात्मा की कृपा, सहाय और आप्तजनों की सहानुभूति से यह सिद्धान्त सर्वत्र भूगोल में शीघ्र प्रवृत्त हो जावे, जिस से सब लोग सहज से धर्मार्थकाममोक्ष की सिद्धि करके सदा उन्नत और आनन्दित होते रहें यही मेरा मुख्य प्रयोजन है"।

'सत्यार्थप्रकाश' के लिखे जाने के ठीक अस्सी वर्ष पश्चात् महर्षि के अनन्य भक्त महाविद्वान् पूज्यपाद श्री स्वामी वेदानन्दतीर्थ जी ने अपने देहावसान से कुछ दिन ही पूर्व यह "सत्यार्थप्रकाश का प्रभाव" नामक प्रबन्ध लिखा था। 'सत्यार्थप्रकाश का प्रभाव' एक प्रतिवेदन है इस बात का कि गत अस्सी वर्ष में स्वामिदयानन्दानुमोदित ब्रह्मा से लेकर जैमिनिमुनिपर्यन्त (जिन्हें प्रबन्धलेखक ने 'विरजानन्दमुनिपर्यन्त' लिखा है) महाशय महर्षियों के मन्तव्य कहां तक सर्वत्र भूगोल में प्रवृत्त हो पाये हैं। पाठक पुस्तक पढ़कर स्वयं जान लेंगे कि सत्य किस प्रकार अपने विरोधियों को मूक बना देता है, किस तरह प्रतिद्वन्द्वी अनुकूल होकर सत्पथ पर आना आरम्भ करते हैं, किस भांति प्रबल प्रचार होते हुए भी निराधार ईसाई मन्तव्य ऋषि की समीक्षा की ताब न लाकर अपने आस्थावान अनुयायियों के हृदय में भी 'आधारशून्य' से प्रतीत होने लगते हैं, क्यों और क्योंकर इसलामी सिद्धान्त 'सत्यार्थप्रकाश' के आलोक में नये नये प्रकार से निर्वचित (निरुक्त) होकर मूलप्रवर्त्तकानुमोदित अपने रौढ़ रूप को छोड़ कर विज्ञानानुकूल रूप धारण कर रहे हैं। आर्यसमाज उन सब विधर्मी लेखकों

का आभारी है जिन्होंने 'सत्यार्थप्रकाश' में की गई समीक्षा की सुखद छाया में उत्साहपूर्वक अनृत को त्याग कर सत्य को ढूंढ़ने का प्रयत्न किया है और इस प्रकार भिन्न भिन्न मतमतान्तरों में बटी हुई मानव जाति के विभिन्न समुदायों को एक दूसरे के समीप लाने का प्रयास किया है।

आर्य पुरुष ऋषि का विधर्मियों पर कितना प्रभाव है इस बात से परिचित होकर आर्यसमाज की वर्त्तमान स्थिति पर सिंहावलोकन कर सकें तथा मतमतान्तरस्थ सज्जन महाशय आत्मनिरीक्षण करने में समर्थ हो सकें इसी ध्येय से यह पुस्तक लिखा गया है। कोई आर्य पुरुष ऐसा नहीं होना चाहिये जिसने इसे एक वार पढ़ न लिया हो। ऋषि गौरव, उनकी समीक्षाशैली की प्रौढ़ता, वैदिक सिद्धान्तों की सत्यता को हृदयंगम कराना लेखक को अभीष्ट था। हमें पूर्ण विश्वास है कि यह पुस्तक इस दिशा में सफल अग्रदूत का कार्य करेगी।

प्रभुकृपा बनी रही तो संस्थान इस का अंग्रेजी तथा उर्दू संस्करण प्रकाशित करने का प्रयत्न करेगा।

संन्यास आश्रम
गाजियाबाद (उ० प्र०)

विदुषामनुचरः
विज्ञानानन्द सरस्वती,
अध्यक्ष-
विरजानन्द-वैदिक-संस्थान

विषयसूची

ओ३म्

अथ सत्यार्थप्रकाश-समीक्षा-प्रभाव:

प्रकाशित सत्यार्थ

'सत्यार्थप्रकाश' एक ऐसा ग्रन्थ है जिसमें अनेक विषयों का समावेश है। प्रथम समुल्लास में साधारणतया परमेश्वर के सौ नामों का वर्णन है, किन्तु आनुषंगिक विषय देखिये। १. अनेक अर्थों वाले शब्द के किस अर्थ को कहां कैसे लिया जाता है, इसका भी विवेचन है। इसको समझाने के लिये व्याख्याता को मीमांसा शास्त्र का पण्डित होना चाहिये। उसे ज्ञात होना चाहिये कि अर्थ निश्चय करने में प्रकरण का एक विशिष्ट स्थान है। २. शब्दों के अर्थ अभिधा, लक्षणा, व्यंजना, एवं तात्पर्य्य को समक्ष रख कर किये जाते हैं। ३. सभी संज्ञावाचक शब्द यौगिक रीति से परमेश्वर के भी नाम हैं। ४. वेद के शब्द रूढ न होकर यौगिक अथवा योग-रूढी वा यौगिकरूढी होते हैं। ५. परमेश्वर के गुण कर्म अनन्त हैं, अत: उसके नाम भी अनन्त है। ६. मङ्गलाचरण, जो मध्यकाल के ग्रन्थलेखक अपने ग्रन्थों में व्यवहृत करते रहें हैं, क्या है, उसे करना वा न करना। ७. 'हरिओम्' शब्द समुदाय को तान्त्रिक होने के कारण निषिद्ध ठहराना।

द्वितीय समुल्लास आकार में सबसे छोटा है। इसका मुख्य विषय तो बालकों के प्रधान तीन गुरुओं (माता, पिता एवं आचार्य) की योग्यता का निरूपण है, किन्तु प्रसङ्गोपात्त अन्य अनेक विषयों का उसमें समावेश है।

यथा:—१. गर्भाधान के पश्चात् पति पत्नी को कठोर संयम से रहने का आदेश, २. बालक को दूध पिलाने के लिये धायी का नियोजन, ३. भूत-प्रेत के मिथ्यात्व का निरूपण, ४. उसी के प्रसङ्ग से भूत-प्रेत आदि शब्दों का यथार्थ अर्थ, ५. फलित ज्योतिष् का निराकरण, ६. जन्मपत्र बनवाने का निषेध, ७. ब्रह्मचर्य-धारण-आदेश, ८. उसके प्रसंग में ब्रह्मचर्य विरोधी व्यवहारों का निषेध, ९. सब प्रकार की भ्रान्त धारणाओं के वारण करने का उपदेश, १०. लाड़ करने से सन्तान का बिगाड़ होता है, ११. यन्त्र, मन्त्र, तन्त्र, मारण, मोहन, उच्चाटन का उत्पाटन, १२. बालकों को माता पिता आचार्य के द्वारा छोटों बड़ों से शिष्ट व्यवहार का उपदेश आदि।

तृतीय समुल्लास में मुख्यतया पढ़ने पढ़ाने के विषय का प्रतिपादन है। उसके प्रसंग से इन विषयों का भी वर्णन है:—१. यज्ञोपवीत संस्कार, २. कन्याओं का यज्ञोपवीत, ३. स्त्री एवं शूद्र को वेदाधिकार, ४. गायत्री मन्त्रार्थ, ५. सन्ध्यादिपंचमहायज्ञ, ६. सन्ध्या के प्रसंग में स्त्री-पुरुषों को प्राणायाम, योगाभ्यास का आदेश। ७. होम का लाभ, ८. यज्ञ में मन्त्र पढ़ने का उपयोग, ९. पांच प्रकार की परीक्षा, १०. उसके प्रसंग में प्रत्यक्षादि प्रमाणों, एवं द्रव्य, गुण कर्म आदि पदार्थों के न्याय एवं वैशेषिक दर्शनों में कथित लक्षण, ११. उसी प्रसंग में दर्शनों के परस्पर विरोध का खण्डन करके अविरोध का स्थापन, १२. तीन प्रकार के ब्रह्मचर्य का निरूपण, १३. शरीर की विविध दशाओं का कथन, १४. 'तप' का वास्तविक स्वरूपनिदर्शन, १५. सदाचार-प्ररूपण तथा तत्प्रसंग में 'यमों' का महत्व, १६. पठनपाठन विधि, इसमें वेद का विद्वान् बनने के लिये अंगोपांगों की शिक्षाविधि, १७. पढ़ने पढ़ाने में त्याज्य ग्रन्थों का सहेतुक निर्देश, १८. प्रसंग से आर्षग्रन्थों का महत्व एवं उपयोगितावर्णन, १९. अर्थ सहित वेद पढ़ने का विधान, २०. विद्या में विघ्न, २१. न्यून से न्यून पठितव्य का निर्देश, २२. विद्यासमाप्ति अथवा निकृष्ट ब्रह्मचर्य की समाप्ति से पूर्व विवाह निषेध, २३. बालक बालिकाओं को शिक्षा से वंचित रखने वाले माता-पिताओं को राजा की ओर से दण्डविधान, २४. विद्यादान का सर्वश्रेष्ठत्व-प्रतिपादन।

चतुर्थ समुल्लास में समावर्तन, विवाह एवं गृहाश्रम ही मुख्य प्रतिपाद्य

हैं, किन्तु प्रसंगप्राप्त अनेक विषयों को विशद किया गया है। यथा:—१. विवाह का समय, २. विवाह दूर देश में करना, ३. विवाह में वर्जनीय कुल, ४. बाल्य-विवाह निषेध, ५. स्वयंवर, ६. वर्णव्यवस्था जन्म से नहीं अपितु गुणकर्म से, ७. वर्णों के कर्त्तव्य, ८. सन्तानपरिवर्त्तन, ९. विवाहलक्षण, १०. ऋतुकालाभिगमन, ११. स्त्रियों का सत्कार, १२. पंचयज्ञविधान, १३. अतिथि यज्ञ के प्रसंग में आचार क्या है इसका निरूपण तथा दान लेने के पात्र एवं पाखण्डियों के लक्षण, १४. धर्ममहिमा, १५. पति पत्नी का सहयोग, १६. ब्राह्मणकर्त्तव्य, १७. पढ़ाने वालों के लक्षण, १८. मूढ की पहिचान, १९. विद्यार्थिलक्षण, २०. वैश्यकर्त्तव्य, २१. शूद्रकर्त्तव्य, २२. पति पत्नी वियुक्त न रहें, २३. बहुविवाहनिषेध, २४. असवर्णविवाहनिषेध, २५. नियोग, २६. द्विजों में पुनर्विवाहनिषेध, २७. नियोग का समय, २८. संयम का आदेश, २९. विवाह की आवश्यकता, ३०. कल्पित ग्रन्थ त्याज्य हैं, ३१. गृहस्थाश्रम की श्रेष्ठता। इन विषयों पर दृष्टि डालिये। समाजशास्त्र का प्रौढ़ विज्ञान इनको समझने समझाने के लिये अपेक्षित है।

पंचम समुल्लास में वानप्रस्थ तथा संन्यासाश्रम मुख्य हैं। अनुषङ्ग से इनका भी उल्लेख है:—१. वानप्रस्थ एवं संन्यास के ग्रहण का समय, २. संन्यास का अधिकार विरक्त को ही है, ३. मूढसंगत्याग, ४. एषणात्याग, ५. संन्यासिधर्म, ६. धर्म के लक्षण, ७. संन्यासाधिकार, ८. संन्यासाश्रम की आवश्यकता, ९. कुछ प्रवादों—यथा संन्यासियों को सुवर्णादि दान न देना, श्राद्ध में न बुलाना, कलियुग में संन्यासनिषेध आदि—का खण्डन, १०. नैष्ठिक ब्रह्मचारी संन्यासी हो सकता है। ११. संन्यासी के कर्त्तव्य। ग्रन्थकार ने संन्यासी का रूप ही कुछ और बतलाया है। दयानन्द के मत से आत्मविस्मरणपूर्वक भगवन्निष्ठ होकर लगातार लोकोपकार करने के लिये निरन्तर घूमघूमकर उपदेश करने वाले विरक्त महामानव की 'संन्यासी' संज्ञा है। यदि दयानन्द निर्दिष्ट वानप्रस्थ एवं संन्यासी मिलने लगें तो संसार से अविद्या, विरोध, कलह मिटकर सर्वत्र विद्या, प्रीति एवं शान्ति का प्रसार हो जाये।

षष्ठ समुल्लास में प्रधान विषय राजधर्म है। यह समुल्लास आर्यराजनीति का दर्पण है। आवश्यकता है कि इस समुल्लास का विशेष प्रचार

किया जाये। प्रसंग से यहां इन विषयों का भी वर्णन है :—१. तीन (राजार्य, विद्यार्य तथा धर्मार्य) सभाओं का आख्यान, २. स्वेच्छाचारी राजा न हो, ३. राजा निर्वाचित होना चाहिये, ४. राज्यसभाओं के सभासदों की अर्हतायें (योग्यतायें), ५. सभापति के गुण, ६. दण्डव्याख्या, ७. सभाओं के सभासद, ८. अष्टादश व्यसन, ९. मन्त्री तथा राजपुरुष, १०. राजपुरुषकार्य विनियोग, ११. युद्ध के नियम, १२. राजप्रजारक्षणविधि, १३. प्रशासनविधि, १४. कर-ग्रहणप्रकार, १५. मन्त्रणाविधि, १६. षड्गुण, १७. मित्र, उदासीन और शत्रु के प्रति राजव्यवहार, १८. मित्रसंप्राप्ति से राज्यसंवृद्धि, १९. आदेय राजांश, २०. राजप्रजासंबन्ध, २१. अष्टादश विवादमार्ग और उनका न्याय, २२. साक्षी कैसे हों, २३. झूठे साक्षी को दण्ड, २४. चोर आदि को दण्ड, २५. कड़ा दण्ड २६. संस्कृत में राजनीति पूर्ण है।

इसी समुल्लास में राजप्रजासम्बन्ध शीर्षक में यह अतीव महत्वपूर्ण वाक्य है :—'यह बात ठीक है कि राजाओं के राजा किसान आदि परिश्रम करने वाले हैं' (पृष्ठ १४२)। ऋषि से पूर्व किसानों को तुच्छता की दृष्टि से देखा जाता था। ऋषि ने वर्णव्यवस्था प्रकरण में तथा यहां इनको अपना उचित स्थान प्रदान किया है। ऋषि की यह मौलिक कल्पना है, इसके लिये वह अथर्व० ३।४।२ तथा ३।५।६,७ के ऋणी हैं। ऋषि राजा का चुना जाना ही प्रशस्त मानते हैं, किन्तु उसे आजीवन अध्यक्ष बनाये रखने के पक्ष में हैं। वे इसे 'राजा', 'सभा-पति' एवं 'अध्यक्ष' कहते हैं। ऋषि वेदप्राण थे, उन्हें यह प्रेरणा वेद से मिली। यह समुल्लास श्री सुरेन्द्रनाथ बनर्जी, पं० मदनमोहन मालवीय आदि के लिये अतीव आकर्षक रहा। ऋषि कठोर दण्ड का विधान करते हैं। ऋषि अपराधी को जीने का पूरा अधिकार देते हैं, किन्तु दूसरों को उसके उपद्रवों से सुरक्षित रखना राजा का कर्त्तव्य मानकर उसके अपराध के लिये कठोर दण्ड की व्यवस्था को प्रशस्त मानते हैं। इतिहास साक्षी है कि मनुष्य का पतन तभी हुआ जब उसके अपराधों की उपेक्षा की गई अथवा उसे कठोर दण्ड न दिया गया।

सप्तम समुल्लास के विषय ईश्वर और वेद हैं। ईश्वरप्रसंग में इन विषयों का वर्णन है :—१. अनेकेश्वरवाद का खण्डन; योरुप के लोगों ने यह प्रवाद फैलाया कि वैदिक लोग अनेक ईश्वर मानते थे; इस समुल्लास में वेद

आदि के आधार से उसका निराकरण किया गया है। २. ईश्वरसिद्धि, ३. न्याय तथा दया का समन्वय, ४. निराकार, ५. 'सर्वशक्तिमान्' शब्द का अर्थ, ६. स्तुति प्रार्थनादि का फल, ७. अष्टाङ्गयोग, ८, परमेश्वर सृष्टिकर्त्ता है, ९. अवतार-निषेध, १०. ईश्वर और पापक्षमा, ११. जीव कार्य करने में स्वतन्त्र, १२. जीव तथा ईश्वर के गुण कर्म स्वभाव, १३. परमेश्वर त्रिकालदर्शी १४. जीव का परिमाण, १५. अद्वैतवादखण्डन, १६. भागत्यागलक्षणा। अद्वैतवादखण्डनप्रसंग में 'सगुण' 'निर्गुण' शब्दों का सुन्दर विवेचन है। इसके आगे वेदविषय है, वहां प्रसंगगत इन विषयों पर विचार है :—१. ऋषि ने युक्ति प्रमाणों से वेद को ईश्वरकृत अत एव सृष्टि के आरंभ की कृति माना है, ईश्वर का गुण होने के कारण उसे नित्य भी माना है; २. वेद को वे न केवल शब्दमय मानते हैं, न ही केवल अर्थाकार, किन्तु शब्दार्थसम्बन्धमय मानते हैं, अर्थात् वेद के शब्दों और उन शब्दों का क्रमविन्यास वे ईश्वरप्रदत्त मानते हैं; ३. सूक्ष्म रूप से विकासवाद (Evolution) का भी खण्डन उन्होंने यहां किया है; ४. वेद का प्रादुर्भाव अग्नि, वायु, आदित्य तथा अंगिरा पर हुआ; ५. ब्राह्मणादि ग्रन्थों के वेदत्व का निरास; ६. शाखाओं का स्वरूप, वे भी वेद नहीं। यहां वेद की आवश्यकता इस वाक्य में अतीव शोभनरूप से कही है :—"जैसे माता पिता अपने सन्तानों पर कृपा दृष्टि कर उन्नति चाहते हैं वैसे ही परमात्मा ने सब मनुष्यों पर कृपा करके वेदों को प्रकाशित किया है, जिससे मनुष्य अविद्यान्धकार भ्रमजाल से छूटकर विद्याविज्ञान रूप को प्राप्त होकर आनन्द में रहें और विद्या तथा सुखों की वृद्धि करते जायें" (पृष्ठ १७७)। यहां हम एक बात बताना चाहते हैं। कई सज्जन वेदों को 'ईश्वरीयज्ञान' कह दिया करते हैं। यह शब्द भ्रम उत्पन्न करने वाला है। 'ईश्वरीयज्ञान' का अर्थ 'ईश्वर संबन्धी ज्ञान' भी हो सकता है। ईश्वर सम्बन्धी ज्ञान अनेक ग्रन्थों में मिलता है। वेदसर्वज्ञाननिधान है, उसमें केवल मात्र ईश्वर सम्बन्धी ज्ञान ही नहीं है। स्वामी जी ने, अत:, अत्यन्त स्पष्ट शब्दों में लिखा है कि 'इसलिये वेद परमेश्वरोक्त हैं' (पृष्ठ १७८)। वेद विषय का यहां अतीव संक्षिप्त निरूपण है। इसको जो विस्तार से जानना चाहें वे 'ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका' नामक ऋषिकृत ग्रन्थ का पढ़े।

अष्टम समुल्लास में सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति तथा प्रलय का वर्णन है। इन तीन अवस्थाओं के प्रतिष्ठापक कई अन्य सिद्धान्तों का विवेचन भी साथ है। यथा :—१. तीन (ब्रह्म, जीव तथा प्रकृति) अनादि, २. प्रकृति का लक्षण; ३. अभिन्ननिमित्तोपादानकारणवाद का निराकरण, ४. सृष्टिप्रयोजन, ५. प्रसङ्गवश पुनः 'सर्वशक्तिमान्' शब्द का अर्थ, ६. साकार निराकार, ७. सृष्टि की एकाकारता, ८. शास्त्रों का अविरोध ९. आरम्भ में अमैथुनी सृष्टि, १०. सृष्टि के आरम्भ में युवा, ११. आदिसृष्टि का स्थान, १२. आर्यावर्त्त का लक्षण, १३. आर्य लोग बाहर से नहीं आये, १४. स्वराज्य की महिमा, १५. पृथिवी का आधार, १६. पृथिवी का भ्रमण, १७. सूर्यादि का भ्रमण आदि आदि अनेक विषयों का निरूपण है। तेंतीस देवताओं का व्याख्यान भी इस समुल्लास में है। इस समुल्लास में अनेक दार्शनिक तत्वों का निरूपण है। परमाणु, अणु, द्व्यणुक, त्र्यणुक, त्रसरेणु आदि का स्वरूप भी इसी समुल्लास में प्रतिपादित है।

मानवसृष्टि का आरम्भ तिब्बत (त्रिविष्टप्) में होना माना है। तिब्बत उतना नहीं जितना आज है। आज का तिब्बत पुराने तिब्बत से बहुत छोटा है। 'लद्दाख' जो आज काश्मीर का होने से भारत का भाग है, 'छोटा तिब्बत' कहलाता है। इसका भाव यह हुआ कि यह भी तिब्बत है। उसके साथ लगता हुआ चीनी तुर्कस्थान (सिंक्याङ) भी किसी समय तिब्बत का भाग था। सं० १९९२ में जब चीन का, चीन के अधिकृत मंचूरिया प्रदेश में जापान से युद्ध हो रहा था,तब उस समय सहसा सिंक्याङ में चीन के विरुद्ध विद्रोह हो गया। प्रधान सेनापति ने जापान के साथ लगे मोर्चे से समग्र सेना हटाकर विद्रोह दमनार्थ सिंक्याङ् में भेज दी। 'रायटर' के संवाददाता के प्रश्न करने पर सेनापति ने कहा :—'चीनी जाति सिंक्याङ् को अपना उद्भव स्थान मानती है। चीनी जाति समूचा चीन हाथ से निकलना सहन कर सकती है किन्तु अपने मूलस्थान के स्वाधिकार से निकलने की कल्पना भी नहीं कर सकती'। तात्पर्य यह है कि दो अत्यन्त पुरातन मानव समुदाय मनुष्योत्पत्ति स्थान के विषय में सहमत हैं।

प्रधानतया यह समुल्लास दार्शनिक एवं वैज्ञानिक तथ्यों का प्रतिपादक

है, किन्तु, प्रसङ्ग से इसमें आर्यावर्त्त का वर्णन आने से देश की तात्कालिक दशा का निरूपण करते हुए यह अत्यन्त महत्वपूर्ण वाक्य ऋषि ने लिखा है:—कोई कितना ही करे परन्तु जो स्वदेशी राज्य होता है वह सर्वोत्तम होता है। अथवा मतमतान्तर के आग्रहरहित, अपने और पराये का पक्षपातशून्य, प्रजा पर पिता के समान कृपा, न्याय और दया के साथ विदेशियों का राज्य भी पूर्ण सुखदायक नहीं है' (पृष्ठ १६५)। इस पवित्र वाक्य का गौरव और भी अधिक भासने लगता है, जब हमें यह ज्ञात होता है कि यह वाक्य उस समय लिखा गया जब दुर्दान्त अंग्रेज शासकों के विरुद्ध बोलना मृत्यु को आमंत्रण देना था। इससे ग्रन्थकार की निर्भीकता का आभास मिल जाता है। दयानन्द को जो लोग वर्तमान स्वराज्यान्दोलन का सूत्रपात्र करने वाला कहते हैं, वे निराधार बात नहीं कहते हैं।

नवम समुल्लास में विद्या, अविद्या, बन्ध और मोक्ष का वर्णन है। इनके स्पष्टीकरण करने के लिये, १. अविद्या का लक्षण, २. उसके प्रसंग से अद्वैत-वादियों का निराकरण, ३. विवेक वैराग्य षट्कसम्पत्ति मुमुक्षुत्वरूप साधन-चतुष्टय का व्याख्यान, ४. श्रवण मनन निदिध्यासन तथा दर्शन का वर्णन, ५. अनुबन्ध-चतुष्टय का कथन, ६. तीन शरीरों का वर्णन, ७. चार अवस्थाओं का स्थापन, ८. बन्धमोक्ष, ९. मोक्ष दशा में इन्द्रियादि के भावाभाव का विवेचन १०. मुक्ति के साधन, ११. मुक्ति से पुनरावृत्ति, १२. मोक्षानन्दभोग की अवधि, १३. अन्नमय प्राणमय मनोमय विज्ञानमय तथा आनन्दमय इन पंच कोषों का उद्घाटन, १४. मतवादियों की मुक्ति का स्वरूप, १५. पूर्व जन्म की स्मृति न होने में हेतु, १६. पूर्वपरजन्म का विधान, १७. किस किस कर्म्म से क्या क्या होता है, १८. आध्यात्मिक आधिदैविक एवं आधिभौतिक दुःखों की विवेचना, इत्यादि नाना विषयों का व्याख्यान किया गया है। सातवां आठवां तथा यह नवम समुल्लास ऋषि के आध्यात्मिक दार्शनिक विचारों का दर्पण हैं। इनमें ऋषि ने ऐसे तत्त्व लिखे हैं जिनको स्पष्ट करने के लिये पृथक् पृथक् ग्रन्थ लिखने की आवश्यकता है। इस बात की नितान्त आवश्यकता है कि इन समुल्लासों में व्यक्त किये गये ऋषि के मन्तव्यों को टीकाटिप्पणीसहित अधिक से अधिक प्रचारित एवं प्रसारित किया जाये। आध्यात्मिक पिपासा शान्त करने के लिये

इतनी सामग्री किसी एक स्थल में मिलना दुर्घट है। उपनिषदों एवं दर्शनों का एक प्रकार से यह सार हैं।

दशम समुल्लास में मुख्य विषय आचार-अनाचार, भक्ष्य-अभक्ष्य हैं। इनका निरूपण करने के लिये, १. धर्म (आचार) का स्वरूप, २. इन्द्रियदमन, ३. विदेशगमन, ४. भक्ष्याभक्ष्य ५. मांसाहारनिषेध, ६. उपकारी पशुओं की हत्या का निषेध, ७. गौ आदि पशुओं की हत्या से होने वाली हानि का करुण किन्तु तर्कसंगत वर्णन, ८. सखरी निखरी, ९. पाक कार्य शूद्र करें, १०. अहिंसा, ११. किसके हाथ का खाना तथा किसके हाथ का न खाना, १२. भोजनस्थान इत्यादि विषयों का विवेचन भी किया गया है। 'किसके हाथ का खायें और किसके हाथ का न खायें ?' इसका उत्तर कितना मार्मिक हैः—'जो आर्यों में शुद्ध रीति से बनावे तो बराबर सब आर्यों के साथ खाने में कुछ भी हानि नहीं, क्योंकि जो ब्राह्मणादि वर्णस्थ स्त्री-पुरुष रसोई बनाने और चौका देने; वर्तन मांजने आदि बखेड़े में पड़े रहें तो विद्यादि शुभ गुणों की वृद्धि कभी नहीं हो सके। देखो महाराज युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में भूगोल के राजा ऋषि महर्षि आये थे एक ही पाकशाला से भोजन किया करते थे' (पृष्ठ २३२-२३३)।

दशवें समुल्लास तक पूर्वार्द्ध समाप्त हो जाता है। उत्तरार्द्ध में चार समुल्लास हैं। प्रत्येक के आरम्भ में एक अनुभूमिका भी है। इन चारों में वेदविरोधी मतों की समीक्षा है। 'इन चारों में से प्रथम समुल्लास में आर्यावर्त्तीय मतमतान्तर, दूसरे में जैनियों के, तीसरे में ईसाइयों और चौथे में मुसलमानों के मतमतान्तरों के खण्डनमण्डन विषय में लिखेंगे' (पृ० २३३)।
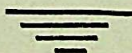
समीक्षाप्रभाव

(१)

पौराणिकों का विरोध शान्त

ग्यारहवें समुल्लास में वाममार्ग, शांकरमत, (अद्वैतवाद) शैवमत, वैष्णवमत, चक्राङ्कित वैष्णवमत, माध्वमत, कबीरपन्थ, दादूपन्थ, नानकपंथ रामस्नेहीमत' गोकुलिये गोसाइयों (वल्लभमतियों) का मत, स्वामिनारायणमत, चोलीमार्ग, बीजमार्ग, लिंगायतमत ब्राह्मसमाज आदि की समीक्षा है। प्रसंगोपात्त, अन्य अनेक विषयों का अद्भुत एवं प्रामाणिक वर्णन भी यहां है। यथाः—आर्यावर्त्त का गौरव, आर्यों का चक्रवर्त्तिराज्य, कुछ चक्रवर्त्ती आर्यराजाओं के नाम, पुरातन काल में तोप बन्दूक होने के प्रमाण×, विद्या का प्रसार आर्यावर्त्त से, इसी प्रसंग से काशी आदि के मानमन्दिर एवं शिशुमारचक्र का उल्लेख, भारत के ह्रास का हेतु महाभारत युद्ध, 'पोप' शब्द की व्याख्या, मूर्त्तिपूजा का आरम्भ, मूर्त्तिपूजा के अनेक दोष, शंकराचार्य का समय, रुद्राक्षधारण, पुराणरचना का उपक्रम, पुराणों के व्यासकृत होने का खण्डन, प्रसंग से भागवत देवीभागवत ब्रह्मवैवर्त्त गरुड़ पुराण आदि का निराकरण, कृष्ण जी की प्रशंसा, चक्रांकितमत समीक्षा के प्रसंग में रामानुजाचार्य से पूर्ववर्त्तीय पट्कोप (शठकोप) आदि का

× भारद्वाज के 'यन्त्रसर्वस्व' तथा राजा भोज के बनाये 'समराङ्गण सूत्रधार' में विमानयानों के निर्माण का विधान है। महाभारत में एक ब्रह्मास्त्र का वर्णन आता है। उसका प्रयोग किसी विशेष व्यक्ति को सिखाया जाता था और उससे प्रतिज्ञा ली जाती थी कि वह इसका उपयोग न करेगा, क्योंकि उससे समस्त पृथ्वी के ध्वस्त होने का भय होता था।

नीचकुल में उत्पन्न होने का वर्णन* ; मूर्त्तिपूजा के प्रसंग में पंचायतन पूजा का सत्य स्वरूप, तीर्थंगुरुमाहात्म्य, नामस्मरण, पुराणविमर्श, इसके साथ वास्तविक पुराणों का निर्देश, पुराणोक्त विविध प्रकार की परस्पर विरुद्ध सृष्टि-उक्ति का प्रतिवचन, अवतारवाद का विस्तृत विवेचन, इसी प्रसंग में प्रह्लाद के सम्बन्ध में ज्ञानगर्भित उक्ति, श्रीमद्भागवत वोबदेव रचित है, बारह ज्योतिर्लिंगों का स्वरूप तथा खण्डन, ग्रहपूजा, सूर्यग्रहण तथा चन्द्रग्रहण का स्वरूप, मरने के पश्चात् जीव की गति, सुपात्र-कुपात्र, लुप्तशाखामीमांसा, विविध मतों के जपमन्त्र, इन मतों के सम्बन्ध में नककटे सम्प्रदाय की कहानी, यथार्थ-ज्ञानप्राप्ति का उपाय, नामधारी ब्रह्मचारी, संन्यासी, खाकी, धनसार के ठगों की लीला, आर्य इतिहास आदि बहुत से मननीय विषयों का मनन है । इन विषयों पर दृष्टिपात करने से ग्रन्थकार के विशाल अध्ययन का तनिकसा भान होता है । कितने सहस्र ग्रन्थ उन्होंने पढ़े होंगे । टिप्पणी लिखने में हमें भी दांतों पसीना आया ।

यह न समझना कि उन्होंने समीक्षा करते हुए केवल दोष ही दिखाये हैं, प्रत्युत इसके विपरीत उनके गुणों को भी माना है । उदाहरणार्थ पुराणों के संबन्ध में उनका कथन है कि पुराणों में सभी बातें मिथ्या नहीं हैं । उनमें सत्य भी है, किन्तु यह बहुत थोड़ा है और जो है, वह वेदादि सत्यशास्त्रों में पहले विद्यमान है । इससे ग्रन्थकार की पक्षपातशून्यता स्पष्ट सिद्ध होती है । मूर्त्तिपूजा को वे पाप मानते हैं । मूर्त्तिपूजा से होने वाली हानियों का विस्तार से यहां वर्णन किया है । पृष्ठ २७३ को पढ़िये उनके आशय का वहां सार दे रखा है । पुराण श्रीव्यास जी की रचना नहीं हो सकते, इस विषय में कितना तर्क-संगत लिखा है :—'जो अठारह पुराणों के कर्त्ता व्यास जी होते तो उनमें इतने गपोड़े न होते । क्योंकि शारीरक सूत्र योगशास्त्र के भाष्य आदि व्यासोक्त ग्रन्थों के देखने से विदित होता है कि व्यासजी बड़े विद्वान् सत्यवादी, धार्मिक, योगी थे । वे ऐसी मिथ्या कथा कभी न लिखते । और

---

* वैष्णव सब से अधिक छूआछात करते और मानते हैं। वैष्णवाचार्यों की इस प्रकार की उत्पत्ति का वर्णन करके ग्रन्थकार मानो कह रहे हैं कि तुम्हें तो छुआछात नहीं करनी चाहिये ।

इससे यह सिद्ध होता है कि जिन सम्प्रदायी परस्पर विरोधी लोगों ने भागवत आदि नवीन कपोलकल्पित ग्रन्थ बनाये हैं, उनमें व्यास जी के गुणों का लेश भी नहीं था। और वेदशास्त्रविरुद्ध असत्यवाद लिखना व्याससदृश विद्वानों का काम नहीं। किन्तु यह काम विरोधी स्वार्थी, अविद्वान् लोगों का है' (पृष्ठ २८९)। व्यास जी पर कितनी भक्ति प्रदर्शित की है। ग्रन्थकार इस हेतु से भी पुराणों के विरुद्ध हैं कि ये हमारे पूर्वजों की मिथ्या निन्दा से भरे पड़े हैं। देखिये :— "देखो! श्रीकृष्ण जी का इतिहास महाभारत में अत्युत्तम है। उनका गुण, कर्म, स्वभाव और चरित्र आप्त पुरुषों के सदृश है। जिसमें कोई अधर्म्म का आचरण श्रीकृष्ण जी ने जन्म से मरणपर्यन्त बुरा काम कुछ भी किया हो ऐसा नहीं लिखा। और इस भागवत वाले ने अनुचित मनमाने दोष लगाये हैं। दूध, दही, मक्खन आदि की चोरी, कुब्जा दासी से समागम, परस्त्रियों से रासमण्डल क्रीडा आदि मिथ्या दोष श्रीकृष्ण जी में लगाये हैं। इसको पढ़-पढ़ा सुन-सुना के अन्य मत वाले श्रीकृष्ण जी की बहुत सी निन्दा करते हैं। जो यह भागवत न होता तो श्रीकृष्ण के सदृश महात्माओं की झूठी निन्दा क्योंकर होती" (पृष्ठ ३०१-२)। आजकल लोग प्रह्लाद की प्रशंसा करते हैं किन्तु स्वामी जी उसकी भी भर्त्संना करते हैं:—'अब रहा हिरण्यकशिपु, उसका लड़का जो प्रह्लाद था, वह भक्त हुआ था। उसका पिता पढ़ाने को पाठशाला में भेजता था।........प्रह्लाद को उसका पिता पढ़ने के लिये भेजता था। क्या बुरा काम किया था? और वह प्रह्लाद ऐसा मूर्ख, पढ़ना छोड़ वैरागी होना चाहता था' (पृष्ठ २९७-८)+।

इन सब मतों की समीक्षा से ग्रन्थकार का एक ही प्रयोजन है कि किसी प्रकार परस्पर के विचार-विनिमय से मनुष्य सर्वमतसम्मत सत्य को जानें और तदनुसार वर्तें। इस आशय को ग्रन्थकार ने इस ग्रन्थ में स्थान स्थान पर व्यक्त किया है। ग्रन्थकार जिस समय कार्यक्षेत्र में आये, उस समय के भारतशासक हमारी निकृष्टता और अपनी उत्कृष्टता सिद्ध करने में लगे हुए थे। एक प्रधान साधन उन्होंने इतिहास को बनाया। स्कूलों, कालिजों में विकृत इतिहास की पोथियां रचवाकर पढ़ाई जा रही थीं, जिनका ध्येय यह सिद्ध करना था कि

+प्रह्लाद के सम्बन्ध में पुराणोक्त कथाओं को स्वामी जी गपोड़ा मानते हैं।

आर्य लोग भारत के मूल निवासी नहीं हैं*। भारतवर्ष का बाहर देशों में राज्य करना तो क्या, यह समूचा कभी भी एकछत्र के अधीन नहीं रहा, तथा भारतीय केवल दार्शनिक कल्पना में ही प्रवीण थे, सांसारिक विद्याओं से वे दूर थे, इत्यादि। ग्रन्थकारने पुरातन ग्रन्थों के गम्भीर, बुद्धिपूर्वक मनन से यह परिणाम निकाला कि यह सब मिथ्या प्रवाद हैं। उन्होंने पुरातन ग्रन्थों के आधार से बताया कि विद्या का मूलस्थान भारत ही है, समस्त संसार को विद्या भारत से ही मिली। भारत में पुराने समय में तोप बन्दूक आदि अस्त्र थे। आर्यों का सार्वभौम चक्रवर्त्तिराज्य था। उन्होंने इतिहास के अनुसन्धान की एक नई दिशा सुझाई। तीर्थों आदि के खण्डन प्रसंग में उन्होंने पण्डों की पुरानी बहियों एवं ताम्रपत्रों की चर्चा भी की है। इससे व्यक्त होता है कि वे ऐतिहासिक सामग्री के प्रति पूर्णरूप से जागरूक थे। इस समुल्लास के अन्त में आर्यराजाओं की वंशावली दी है। कई ऐतिहासिक उससे सहमत नहीं हैं, किन्तु इतना सभी मानते हैं कि इस दिशा के प्रदर्शक वही हैं।

इस समुल्लास को लिखने के लिये ग्रन्थकार को कितना परिश्रम करना पड़ा। समग्र पुराण, उपपुराण, उपोपपुराण, तन्त्र (शैवतन्त्र, शाक्ततन्त्र, वैष्णवतंत्र), विविध सम्प्रदायों के दार्शनिक × एवं धार्मिक ग्रन्थ यथा कबीर-वचनावली, दादूदयाल की वाणी, श्रीगुरुग्रन्थसाहब, रामस्नेहियों का ग्रन्थ आदि-आदि हजारों संस्कृत एवं भाषा के ग्रन्थ उन्होंने पढ़े। जिस मत के सम्बन्ध में लिखा, पूरी खोज करके लिखा।

यह तो असम्भव है कि कोई सुधारक वा संशोधक आये और उसका विरोध न हो। दयानन्द का भी विरोध हुआ, जीवनकाल में भी और परलोक गमन के पीछे भी, और वह विरोध किसी न किसी रूप में चालू भी रहेगा। किन्तु विरोधी अपनी बातों में सुधार भी साथ ही साथ करते जाते हैं। प्रथम समुल्लास से लेकर ग्यारहवें समुल्लास तक का खण्डन मुरादाबादी पण्डित ज्वाला-

---

* दुर्भाग्य से स्वराज्य होने पर भी स्वदेशीय शासकों के मस्तिष्क से यह कूड़ा नहीं निकला। क्या करें बेचारे? शिक्षा दीक्षा जो वैसी हुई।

× अद्वैतवाद के लिये साधु निश्चलदास के 'विचारसागर' एवं 'वृत्ति-प्रभाकर' ग्रन्थ तक पढ़ डाले।

प्रसाद मिश्र ने 'दयानन्द तिमिर भास्कर' ग्रन्थ में करने की चेष्टा की, किन्तु वह सफल नहीं रहे, अशुद्ध उद्धरण देने में उन्हें कोई संकोच नहीं था। उन्हें तो दयानन्द का खण्डन करना था, चाहे वैसा करते हुए उनके अपने सिद्धान्त का भी खण्डन हो जाये। उसका खण्डन मेरठ वास्तव्य पण्डित तुलसीराम स्वामी ने 'भास्करप्रकाश' में किया। उसका प्रति खण्डन पं० ज्वालाप्रसाद ने पुनः किया। पं० तुलसीराम ने इसका करारा प्रत्युत्तर 'दिवाकरप्रकाश' में दिया। पं० ज्वालाप्रसाद चुप हो रहे। अन्य अनेकों ने 'सत्यार्थप्रकाश' का खण्डन करने का यत्न किया, किन्तु उनके लेखों में महर्षि के प्रति गाली अधिक हैं, सार बात प्रायः नहीं है। ऐसे फक्कड़ों को भी आर्यसमाज की ओर से उनकी अभीष्ट भाषा में उत्तर दिया गया है। हमें टिप्पणी लिखते हुए यह निश्चय हो गया कि 'सत्यार्थप्रकाश' एक ऐसा कुन्दन है जिसे जितना अधिक प्रतिद्वन्द्वी-अग्नि में तपाया जाता है उतना ही वह अधिक चमक उठता है।

महर्षि का स्वाध्याय कितना विस्तृत था इसके लिये 'भ्रान्तिनिवारण' से उनका एक लेख हम यहां उद्धृत करते हैं। पण्डित महेशचन्द्र न्यायरत्न को उत्तर देते हुए उन्होंने लिखा है :—"क्योंकि मैं अपने निश्चय और परीक्षा के अनुसार ऋग्वेद से लेके पूर्वमीमांसा पर्यन्त अनुमान से तीन हज़ार ग्रन्थों के लगभग मानता हूँ" (दयानन्द ग्रंथमाला शताब्दी संस्करण पृष्ठं ८७७)। कितने ग्रन्थ पढ़ कर परीक्षा करके इस संख्या का निश्चय किया होगा! मान्यग्रन्थों की यह संख्या केवल संस्कृत ग्रन्थों की है। अन्य भाषाओं के ग्रन्थ, जो उन्होंने पढ़े वा सुने, इससे पृथक् हैं।

(२)

जैनियों की प्रतिक्रिया

द्वादश समुल्लास में नास्तिकमतों (चारवाक, बौद्ध तथा जैन मतों) का खण्डन है। इन तीनों मतों के सम्बन्ध में उस समय मुद्रित साहित्य का अभाव सा था। चारवाकों के साहित्य की अब केवल दो एक पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं। बौद्ध साहित्य का प्रकाशन भी उस समय अभी आरम्भ ही हुआ था, और वह भी विदेश में। इससे विवश होकर ग्रन्थकार को इन दो मतों की समीक्षा

के लिये सायणमाधवकृत 'सर्वदर्शनसंग्रह' को आधार वनाना पड़ा। इस समय बौद्धमत को भारत में पुनर्जीवित करने की चेष्टा की जा रही है। हमें आश्चर्य होता है अनेक प्रकार की भ्रान्त धारणाओं (Superstitions) के प्रचारक बौद्धमत को बुद्धिसंगत माना जा रहा है। बौद्ध जातकों में इतने गपोड़े हैं कि उनकी यदि कहीं समता मिल सकती है तो जैन पुराणों में। बेचारे भागवत आदि पुराण तो उनकी छाया को भी नहीं छू सकते। जैनमत के ग्रन्थ भी उस समय सुलभ न थे, जो थोड़े से ग्रन्थ या ग्रन्थराज (प्रकरणरत्नाकर) स्वामी जी को मिले, वे श्वेताम्बर जैनों के थे।

'प्रकरणरत्नाकर' चार भागों में है। प्रत्येक भाग में निविष्ट ग्रन्थों का विवरण इस प्रकार है। प्रथम भाग वड़े आकार (११$\frac{१}{२}$ × ८$\frac{१}{२}$ इंच) के ७९७ पृष्ठ का है। इसमें पांच ग्रन्थ हैं:—१. न्यायविशारद महोपाध्याय श्रीमद् यशोविजयकृत 'विहरमाण तीर्थंकर श्री सीमन्धर स्वामी की स्तुतिगर्भित साढ़े तीन सौ गाथायें'। इसमें सतरह ढालें हैं; २. श्री देवचन्द्रकृत 'आगमसार'; ३. ग्रन्थिदेवचन्द्रकृत 'नयचक्रसार'; ४. 'आनन्दघन चौवीसी' (चतुर्विशति जिनस्तवन) बालबोध सहित; ५. द्रव्यगुणपर्य्यायिनो रास। दूसरे भाग में पूर्वोक्त आकार के ८१६ पृष्ठ हैं। इसमें इन ग्रन्थों का संग्रह है :—१. श्री रत्नशेखर-सूरिकृत श्रीऋषभस्तुतिगर्भित महिम्न-स्तोत्र ; २. श्री क्षमाकल्याण जी कृत चतुर्विशतिजिनस्तुति; ३. श्री मुनिसुन्दरसूरिकृत अध्यात्मकल्पद्रुम; ४. श्री कल्याणसागर सूरिकृत जिनस्तोत्र-संग्रह (इसमें विभिन्न लेखकों के रचे चौबीस स्तोत्र हैं); ५. श्री जिनप्रभाचार्य्यकृत विविधविषयक स्तोत्र (इसमें २८ स्तोत्र हैं); ६. अध्यात्ममतपरीक्षा; ७. समयसार नाटक; ८. सम्यक्त्व-स्वरूप स्तवग्रंथ; ९. सम्यक्त्वविचारगर्भित महावीरजिनस्तोत्र; १०. षड्द्रव्य-विचार। तृतीय भाग में उसी आकार के ८४० पृष्ठ हैं। इसमें इन ग्रन्थों का संकलन है :—१. श्रीनेमिचन्द्रसूरिकृत 'प्रवचनसारोद्धार' (यह बहुत वड़ा ग्रन्थ है जिसका परिमाण ५६८ पृष्ठ है); २. महावीरजिनस्तुति; ३. श्रीयशोविजय-उपाध्यायकृत एक लेख जो दिगम्बरों तथा ढूंढकों के विरुद्ध है; ४. निगोदछत्तीसी; ५. श्री रत्नाकरसूरिकृत रत्नाकरपंचवीशी; ६. श्रीमद्यशोविजय-उपाध्यायकृत सीमंधरस्वामी की स्तुति में सवा सौ गाथायें; ७. शोभनमुनिकृत चतुर्विशति जिनस्तुति; ८. भववैराग्यशतक;

९. ऋषभवीरजिनस्तुति; १०. हृदयप्रदीपषट्त्रिंशिका; ११. श्री हेमचन्द्राचार्य्यकृत योगशास्त्र में से निकाला हुआ एक ग्रंथ (जिसमें मार्गानुसारी के लक्षण हैं)। चतुर्थ भाग में ६३३ पृष्ठ हैं। इसमें निम्नलिखित ग्रन्थ सम्मिलित किये गये हैं :—१. इन्द्रियपराजयशतक; २. अर्हंदादिस्तवन; ३. पार्श्वनाथस्तवन; ४. चतुर्विंशतिजिनस्तवन; ५. युगादिजिनस्तवन; ६. पार्श्वनाथजिनस्तवन; ७. श्री जिनप्रभसूरिकृत श्रीशान्तिजिनस्तवन; ८. साधारणजिनस्तवन; ९. महावीरजिन-स्तवन; १०. पार्श्वनाथजिनस्तवन; ११. ऋषभादिजिनस्तवन; १२. संघयणीरत्न-त्रैलोक्यदीपिका (संग्रहणी); १३. अतिसंक्षिप्ततर संघयणी; १४. रत्नशेखरसूरि-कृत क्षेत्रसमास; १५. सिद्धांतस्तवन; १६. ऋषभादिवर्धमानान्तजिनस्तवन; १७. यमकमय चतुर्विंशति; १८. 'कर्म्मविपाक' नामक प्रथम कर्म्मग्रन्थ; १९. 'कर्म्म-स्तवन' नामक द्वितीय कर्म्मग्रन्थ; २०. 'बन्धस्वामित्व' नामक तृतीय कर्मग्रन्थ; २१. 'षडशीति' नामक चतुर्थ कर्म्मग्रन्थ; २२. 'शतक' नामक पंचम कर्म्मग्रन्थ; २३. 'सप्ततिका' नामक षष्ठ कर्म्मग्रन्थ। इस प्रकार देखें तो 'प्रकरणरत्नाकर' ग्रन्थराज छोटे-बड़े उनचास ग्रन्थों का संग्रह है। इसमें जैनों के सभी प्रकार के ग्रन्थ आगये हैं। किसी मत की आलोचना के लिये उनचास ग्रन्थ न्यून नहीं हैं। किन्तु ग्रन्थकार ने इसके अतिरिक्त कई अन्य ग्रन्थों को भी सामने रखा है। इससे यह समीक्षा सुपुष्ट एवं प्रामाणिक है।

जैनों पर इस समीक्षा की प्रतिक्रिया दो प्रकार से हुई है। एक वर्ग ने गाली देकर इस समीक्षा का निराकरण समझा है। उस श्रेणी में पण्डित जियालाल एवं स्वामी कर्म्मानन्द जी हैं। गाली देने में पण्डित जियालाल जी स्वामी कर्म्मानन्द के गुरु हैं। स्वामी कर्म्मानन्द पहले आर्य्यसमाजी थे, किसी एक असह्य कारण से आर्य्यसमाज में उनके लिये स्थान न रहा, तो वे जैन बन गये और जैन भी दिगम्बर। आर्य्यसमाज में रहते समय उन्होंने जैनों के विरुद्ध पुस्तकें लिखीं। जैन बन कर उन्होंने आर्य्यसमाज के विरुद्ध लिखने का व्यवसाय आरम्भ किया। आर्य्यसमाज ने उनकी पुस्तकों को सदा उपेक्षा से देखा। 'सत्यार्थप्रकाश' के बारहवें समुल्लास के खण्डन में उन्होंने भी लेखनी चलाई किन्तु किसी जैन सिद्धान्त के समर्थन वा वैदिक मन्तव्य के कदर्थन के लिये नहीं, प्रत्युत ऋषि दयानन्द को भर पेट गालियां देने के लिये। एक और सज्जन

श्री अजितकुमार शास्त्री ने भी संवत् १९८१ में 'सत्यार्थप्रकाश' के विरुद्ध एक पुस्तक लिखा था। आर्य्यसमाज ने उसे भी उपेक्षा से देखा। उसका कारण है उसकी प्रवञ्चना (जालसाजी)। जैनमत को वेदों से पूर्व का सिद्ध करने के लिये इस महाशय ने वेद के नाम से एक वचन गढ़ा है :—"ओं त्रैलोक्यप्रतिष्ठितान् चतुर्विंशतितीर्थंकरान् ऋषभाद्यान् वर्धमानान्तान् सिद्धान् शरणं प्रपद्ये"। इसका पता भी लिखने का दुःसाहस किया गया है। हम समस्त जैन पण्डितों को चुनौती देते हैं कि वे इस वचन को ऋग्वेद तो क्या किसी वैदिक शाखा, पुराण, तन्त्र में से भी दिखा दें। यतः किसी भी जैन विद्वान् ने इस प्रकार की ठगी का विरोध न किया अतः हमें तो सन्देह होने लग गया कि यह सज्जन आर्य्यसमाज के मुंह आकर अपनी प्रतिष्ठा जमाना चाहते हैं। इसी कोटि के मुनि रत्नचन्द्र जी हैं। उन्होंने भी इसी लीला का अनुसरण करके मुनित्व की सफलता की है।

जैनों का अन्य मतियों को अपने ग्रन्थ न दिखाना

स्वामी जी का प्रथम आक्षेप यह है कि जैन लोग अपने पुस्तक दूसरे को नहीं दिखाते। इस पर जैनों ने स्वामी जी के विरुद्ध सभी प्रकार का अवाच्य लिखा है। हमने इस विषय में जैन विद्वान् श्री जगमन्दिरलाल जैनी एम० ए०, एल० एल० बी० का साक्ष्य प्रस्तुत कर दिया है। उसे हम यहां प्रसंगात् पुनः उद्धृत कर देते हैं :—"Worse than this, they were religiously averse to letting non-Jains read, or even see or touch their sacred books." (Outlines of Jainism preface XII Page) [इससे भी बुरा यह है कि वे (जैन) धार्मिकतया अजैनों को अपने ग्रन्थ पढ़ने देना तो क्या देखने वा छूने देने के भी विरुद्ध थे]। यह प्रवृत्ति यहां तक ही समाप्त न हुई, अपितु सधर्म्मी जैनगृहस्थों पर जैनशास्त्रों के पढ़ने का प्रतिबन्ध लगा दिया गया। 'जैन साहित्य में विकार' नामक ग्रन्थ में प्रसिद्ध जैन विद्वान् पण्डित बेचरदास जी ने लिखा है :—'......उन ज्ञान के पुजारियों (पूजा अरियों) ने ज्ञान के भण्डारों पर अपने डबल चाबी के ताले लगाकर उसे अपना कैदी बना रखा है......इस पक्ष के मुनि (चाहे मेरे जैसे गृहस्थ के पास ही पढ़े हों) कहते हैं कि सूत्र पढ़ने का अधिकार हमें ही है, श्रावकों को नहीं' (पृष्ठ ५७-५८)। उन्होंने

पुनः लिखा है :—'श्री हरिभद्रसूरि लिखते हैं कि······इनमें से कितने एक कहते हैं कि श्रावकों के सामने सूक्ष्म बातें न कहनी चाहियें' (पृष्ठ १२४-१२६)। तात्पर्य्य यह कि हरिभद्रसूरि के समय में भी यह प्रवाद था कि गृहस्थों को न पढ़ाओ, जब यह बात है तो अजैन पर तो विशेष प्रतिबन्ध होगा। 'जैन साहित्य में विकार' के पृष्ठ १२६ की टिप्पणी में लिखा है :—'श्रावकोंको सूत्र न पढ़ने देने की बात का मूल इसी उल्लेख में समाया हुआ है'। पुनः वहां पृष्ठ २५२ पर लिखा है :—'साधु लोग कहते हैं कि गृहस्थों को सूत्र पढ़ने का अधिकार नहीं है। गृहस्थ तो मात्र सूत्रों का श्रवण ही कर सकते हैं, और वह भी हमारे द्वारा'।

इन प्रमाणों से इतना सिद्ध हो गया कि स्वामी जी ने मिथ्या नहीं लिखा। श्री जगमन्दिरलाल जी दिगम्बर जैन हैं और श्री पं० बेचरदास जी श्वेताम्बर जैन, दोनों ने स्वामी जी के आक्षेप का समर्थन कर दिया है और सिद्ध कर दिया है कि ऋषि का आक्षेप निराधार नहीं, प्रत्युत यह मान्यता जैनों की दोनों शाखाओं में रही है। जिस प्रकार पुराणियों के वर्ग विशेष को वेद का एकाधिकार रखने का ऋषि ने प्रबल विरोध किया और वेदों एवं सत्य-शास्त्रों के प्रमाणों से सिद्ध किया कि मनुष्य मात्र को वेद पढ़ने का अधिकार है चाहे वह स्त्री हो अथवा पुरुष हो। किसी भी देश वा वर्ग के मनुष्य को वेद पढ़ने से रोका नहीं जा सकता; ऋषि की इस घोषणा से साहस पाकर पण्डित बेचरदास जी अपने ग्रन्थ में लिखते हैं :—'पाठको! आप स्वयं देख सकते हैं कि बीसवीं सदी के इन निर्ग्रन्थ महात्माओं की कितनी सत्ता और शेखी है' (पृष्ठ २५२)। 'जैसे ब्राह्मणों ने वेद का अधिकार अपने लिये ही रखकर दूसरों को उनके अनधिकारी ठहरा कर अपनी सत्ता जमाई थी, वैसे ही इन चैत्यवासियों ने भी आगम पढ़ने का अधिकार अपने लिये ही रिजर्व रखा और श्रावकों को उनका अनधिकारी ठहराया था। यदि वे श्रावकों को आगम पढ़ने की छूट दे दें तो अंग ग्रन्थों को पढ़ कर जो धन वे स्वयं उपार्जन करना इच्छते थे वह किस तरह बन सकता था' (२५२-२५३)। इसके आगे पण्डित बेचरदास जी ने इस कर्म में मुनियों के स्वार्थ को कारण बताया है। इसी पुस्तक के पृष्ठ २५३ पर वे पुनः लिखते हैं:—'श्रावकों को आगम न बांचने देने का बीज चैत्यवासियों

ने ही बोया है और आज तक वह उसी तरह का सड़ा हुआ पानी पी-पीकर इतना बढ़ गया है कि अब हमें अवश्य ही उसका विच्छेद करना होगा'। पुनः वहां पृष्ठ २६० पर लिखा है :—'यह तो सूत्र पढ़कर धन कमाने वाले चैत्यवासियों ने ही उन्हें सूत्र के अनधिकारी ठहराया था और तब से लेकर यह भद्रिक श्रावक आज तक परतन्त्रता की जंजीरों में जकड़े हुए बेचारे विचारशून्य से हो बैठे हैं'। पृष्ठ २६६ पर स्थानाङ्ग सूत्र का एक उद्धरण देकर पुनः लिखा गया है:—"इस उल्लेख में ज्यों सूत्र पढ़ाने के अन्य कारण बतलाये हैं त्यों उपग्रह को भी कारण कोटि में रखा है। उपग्रह के अर्थ को स्पष्ट करते हुए टीकाकार ने बतलाया है कि 'जो आहार, पानी और वस्त्र आदि को पैदा करने में समर्थ हों उन्हें सूत्र पढ़ाकर उपग्रहित करना'। यहां पर आप देख सकते हैं कि यह उल्लेख तो बिल्कुल स्पष्टतया गृहस्थियों के ही लिये लिखा गया है, गृहस्थी ही आहार, पानी और वस्त्र आदि पैदा करके साधुओं को देते हैं, वे ही अपने पसीने की कमाई से साधुओं का पोषण कर रहे हैं। अतः सूत्रकार तथा टीकाकार साधुओं को बदले की नीति की सूचना करते हैं कि वे गृहस्थों को सूत्र पढ़ाकर उपग्रहित आभारी करें"।

श्रावकों को सूत्रादि पढ़ने के अधिकार विषयक प्रमाण पण्डित बेचरदास ने कई दिये हैं। उनमें से हम एक यहां देते हैं :—'बालस्त्रीवृद्धमूर्खाणां नृणां चारित्रकांक्षिणाम्। उच्चारणाय तत्त्वज्ञैः सिद्धान्तः प्राकृतः कृतः' (तत्वनिर्णय-प्रसाद पृष्ठ ४१३)। इस श्लोक पर से यह बात स्पष्ट होती है कि बालक, स्त्री, वृद्ध और मूर्ख लोगों के लिये अर्थात् आबाल गोपाल सभी बिना प्रयास श्रीवर्धमान के प्रवचन का उच्चारण कर सकें एवं अच्छी तरह समझ सकें इसी हेतु से आगम को प्राकृत जैसी सर्वदेशीय, सरल और मधुर भाषा में संकलित किया गया है। यदि उस प्रवचन आगम को पढ़ने का अधिकार मात्र मुनियों को ही होता तो उन ऋषियों को यह श्लोक लिखने की क्या आवश्यकता थी। प्रभावक चरित में कहा है कि चौदह पूर्व × संस्कृत भाषा में थे, वे काल के प्रभाव से उच्छिन्न-नष्ट हो गये, इस समय सुधर्मस्वामी-भाषित एकादशांग सूत्र हैं जिन्हें उन्होंने बाल, स्त्री, वृद्ध और मूर्ख आदि मनुष्यों को भी उसका लाभ मिल सके

× जैनों के मूल धर्मग्रन्थ।

ऐसी अनुग्रहबुद्धि से प्राकृत में रचे हैं। "१. दशवैकालिक टीका तथा धर्म्म-बिन्दुवृत्ति। २. चतुर्दशाणि पूर्वाणि संस्कृतानि पुराऽभवन्।११४। प्रज्ञातिशय-साध्यानि तान्युच्छिन्नानि कालतः। अधुनैकादशाङ्ग्यस्ति सुधर्म्म स्वामिभाषिता। ११५।" '। यह युक्ति वैसे ही है जैसे पुराणकर्त्ताओं ने पुराणनिर्माण का कारण बताने में दी है। हमें प्रसन्नता है कि ऋषि दयानन्द जो चाहते थे वह हो रहा है। ऋषि की इच्छा थी कि प्रत्येक मत वाला अपने अपने मत का संशोधन करे। जैन वैसा करने लग गये हैं, अतः वे धन्यवाद के पात्र हैं।

ऋषि दयानन्द का एक कथन यह है कि मूर्तिपूजा जैनों से चली। पण्डित बेचरदास जी मूर्त्तिपूजक हैं। मूर्त्तिपूजा की आवश्यकता को मानते हैं किन्तु मूर्त्तिपूजा का प्रतिपादन जैनागमों में नहीं मानते। देखिये :—'उपरोक्त चैत्यवाद की चर्चा से यह बात तो आप भली प्रकार जान सके हैं कि मूर्तिवाद चैत्यवाद के बाद का है अर्थात् उसे चैत्यवाद जितना प्राचीन मानने के लिये हमारे पास एक भी ऐसा मजबूत प्रमाण नहीं है जो शास्त्रीय सूत्रविधि-निष्पन्न या ऐतिहासिक हो। यों तो हम और हमारे कुलाचार्य मूर्त्तिवाद को अनादि का ठहराने तथा महावीरभाषित बतलाने का बिगुल बजाने के समान बातें किया करते हैं, परन्तु जब उन बातों को सिद्ध करने के लिये कोई ऐति-हासिक प्रमाण या अंग सूत्र का विधिवाक्य मांगा जाता है तब हम बगलें झांकने लगते हैं और प्रवाहवाही परम्परा की ढाल को आगे कर अपने बचाव के लिये बुजुर्गों को सामने रखते हैं। मैंने बहुत ही कोशिश की तथापि परम्परा और 'बाबावाक्यं प्रमाणं' के सिवा मूर्त्तिवाद को स्थापित करने के सम्बन्ध में मुझे एक भी प्रमाण या विधान नहीं मिला' (पृष्ठ १७१-१७२)। और देखिये:—'मैं यह बात हिम्मतपूर्वक कह सकता हूं कि मैंने मुनियों या श्रावकों के लिये देवदर्शन या देवपूजन का विधान किसी अंग सूत्र में नहीं देखा। इतना ही नहीं बल्कि भगवती आदि सूत्रों में कई एक श्रावकों की कथायें आती हैं, उनमें उनकी चर्चा का भी उल्लेख है परन्तु उनमें एक भी शब्द ऐसा मालूम नहीं होता कि जिसके आधार से हम अपनी उपस्थित की हुई देवपूजा और तदाश्रित देवद्रव्य की मान्यता का घड़ी भर के लिये टिका सकें' (पृष्ठ १७४)। इससे आगे इसी पृष्ठ पर पुनः लिखा है :—"मैं अपने समाज के धुरन्धर कुलगुरुओं से नम्रतापूर्वक

यह प्रार्थना करता हूं कि यदि वे मुझे इस विषय का एक प्रमाण या प्राचीन विधान विधिवाक्य बतलायेंगे तो मैं उनका विशेष ऋणी हूंगा'। कितनी प्रबल चुनौती है। किन्तु दूसरी ओर से 'मौनं सर्वार्थसाधकम्', [एक चुप सौ सुख] वाला व्यवहार है। और देखिये :—'वे हिंसामूलक इस मूर्त्तिवाद के विधान का और तदवलम्वी देवद्रव्य के विधान का उल्लेख किस तरह कर सकते हैं' (पृष्ठ १८०)। और पढ़िये :—'जिस मूर्त्तिवाद का विधान और देवद्रव्य की गंध अंगसूत्रों में नहीं मिलती' (पृष्ठ १८६)। आगे चलिये :—'अभी तक एक भी ऐसा प्रमाण उपलब्ध नहीं हुआ जिससे यह प्रमाणित हो कि श्री वर्धमान के समय मूर्त्तिवाद वर्तमान के समान एक मार्गरूप प्रचलित हुआ हो, तथा वीरनिर्वाण से ६८० वर्ष में संकलित हुआ साहित्य भी इस विषय में किसी प्रकार का विधायक प्रकाश नहीं डालता कि जो मूर्त्तिवाद के साथ प्रधानतया विशेष संबन्ध रखता हो। इससे हम इतने सरल सत्य को तो अवश्य समझ सकते हैं कि वीरनिर्वाण से ६८० वर्ष तक के या विक्रम से ५१० वर्ष तक के समय में एक प्रवाही मार्गरूप में मूर्त्तिवाद की उत्कट गन्ध तक मालूम नहीं होती' (पृष्ठ १६२)। उपसंहार में वह लिखते हैं :—'इस प्रकार मैंने यथा-मति मूर्त्तिवाद और देवद्रव्यवाद जिसके विधान की बू तक भी अंगग्रन्थों में नहीं मिलती, उन्हें सूत्र पीछे के साहित्य के प्रमाणों की और उस समय के उपलब्ध इतिहास की सहाय से आपके समक्ष चर्चास्पद रीति से उपस्थित किये हैं' (पृष्ठ २२२)।

पाठको ! देखा आपने। किस प्रकार मूर्त्तिपूजा को पण्डित वेचरदास जी ने जैनशास्त्रों के विरुद्ध प्रमाणित किया है। हमें प्रसन्नता है। यदि सभी जैन पण्डित जी के मत को मान लें तो हमारा और जैनों के भेद का एक बड़ा हेतु न्यून हो जाता है। श्वेताम्बर जैनों में ढूंढिये तथा दिगम्बरों में तारणतरण-पन्थ के अनुयायी भी मूर्त्तिपूजा के विरोधी हैं। हम यहां पण्डित वेचरदास जी से कहना चाहते हैं कि जब मूर्त्तिपूजा के विधान की गन्ध वा बू भी जैन-अंग शास्त्रों में नहीं तो आप उससे क्यों चिपके हुए हैं। छोड़िये उसे और अपने पूज्य आचार्य्य महावीर स्वामी के पूरे अनुयायी बन जाइये। इस विषय में हम एक बात कहना चाहते हैं कि जैन पण्डित दिन-रात जैन जनता को जताते रहते हैं

कि जैनमत संसार का सबसे पुराना मत है, यदि यह बात मान ली जाये तो अगत्या यह बात भी माननी पड़ेगी कि मूर्त्तिपूजा भी जैनों से चली क्योंकि जैन यह कहते हैं कि उनके आद्य तीर्थंकर के समय से मूर्त्तिपूजा का चलन है।

तीर्थङ्करों की सर्वज्ञता

जैन और बौद्ध दोनों अपने तीर्थङ्करों को सर्वज्ञ मानते हैं। स्वामी जी ने इस पर भी आक्षेप किया है। इस विषय में हम अपना निजी विचार यहां व्यक्त करना चाहते हैं। जैन और बौद्ध दोनों की विचित्र परिस्थिति है। नित्यसिद्ध ईश्वर का निषेध करके जब उनके आत्मा में एक विलक्षण अभाव की अनुभूति होने लगी तब उन्होंने अपने मतों के प्रवर्त्तकों को सर्वज्ञ मानकर उनकी आराधना करके उस अभाव की पूर्ति का प्रयत्न किया। और उनमें ऐसे ऐसे विशेषणों का आरोप किया जो एक मनुष्य में किसी भांति भी संभवित नहीं हो सकते। 'सर्वज्ञ' शब्द का अर्थ समझने में दोनों मतों के महापण्डितों से भूल हुई है। सर्वज्ञ के अंगभूत 'सर्व' शब्द का अर्थ उन्होंने 'सब कुछ' समझ लिया। वास्तव में यह एक पारिभाषिक शब्द है जिसका अर्थ है:—'हेय (दुःख), उसका हेतु, दुःखहान तथा उसका उपाय।' इसको "सर्व" कहा जाता है। मोक्ष प्राप्ति के लिये सर्वज्ञ होना आवश्यक है और वह सर्वज्ञता इस हेयादि सर्व के ज्ञान से सम्भव हो सकती है। इस भाव को समक्ष रख कर न्यायदर्शन के १-१-९ सूत्र के भाष्य में वात्स्यायन मुनि ने लिखा है :—"तत्र आत्मा सर्वस्य द्रष्टा सर्वस्य भोक्ता, सर्वज्ञः सर्वानुभावकः" [आत्मा सर्व का द्रष्टा, सर्व का भोक्ता, सर्वज्ञ तथा सर्व का अनुभव करने वाला है]। स्पष्ट ही यहां सर्व का अर्थ सब कुछ नहीं प्रत्युत विशेष अर्थ है जिसका निर्देश हमने ऊपर किया है।

प्रत्येक मत के चार प्रस्थान सम्भव हो सकते हैं। १. धार्मिक धारणा, २. दार्शनिकदृष्टि, ३. वैज्ञानिक विज्ञप्ति तथा ४. पौराणिक इतिवृत्त। समीक्षाकार ने जैनों के इन चारों प्रस्थानों की समीक्षा की है। इनके जो गुण हैं उन्हें भी माना है। जैनों की धार्मिक धारणा पर स्वामी जी को जो आपत्ति है, उसे आज जैन भी स्वीकार करते हैं। जैसे अहिंसा को ही ले लीजिये। ऋषि दयानन्द अहिंसावादी हैं किन्तु सर्वथा अहिंसा को वे असम्भव समझते हैं। उनकी

इस धारणा को आज जैन विद्वानों ने स्वीकार कर लिया है। दार्शनिक दृष्टि से उनका इससे बहुत मतभेद नहीं है। उनकी वैज्ञानिक विज्ञप्ति को वे गप्प मानते हैं। विवेकशील जैन सुधियों को भी वह खटकने लगी है। पौराणिक इतिवृत्त के सम्बन्ध में भी आज जैन विद्वानों की दृष्टि कुछ और हो रही है।

दिगम्बरों पर भी ऋषिवर का कुछ न्यून प्रभाव नहीं पड़ा, वे तो सिरे से अपने कई मान्य ग्रन्थों को मानने से इनकार करने लगे हैं। ये लक्षण भले हैं। सुधारप्रिय दयानन्द का आन्दोलन अपना कार्य्य कर रहा है। और वह दिन दूर नहीं कि जब जैन भाई हमारे अतीव समीपी हो जायेंगे।

जैनबौद्ध-अभेद

स्वामी जी ने जन और बौद्ध मत को एक माना है। जैन इस पर बहुत रुष्ट हुए हैं। हम उनसे कहना चाहते हैं कि जिस प्रकार श्वेताम्बर दिगम्बर सम्प्रदाय घोर मतभेद रखते हुए भी जैन हैं, उसी प्रकार कुछ एक मान्यताओं में मतभेद रखते हुए भी जैन बौद्ध एक हैं। जिस प्रकार चैत्यवासी, ब्रह्मदीपिका, बड़गच्छ, षट्कल्याणकवाद, खरतर, आंचलिक, सार्धपौर्णमीयक, आगमिक, तपागच्छ, लुंकामत, कटुकमत, बीजामत, ढूंढिया तेरहपन्थी भीखमपन्थी, विधिपक्षी, तीनथोइया आदि सिद्धान्तभेद, आचारभेद रखते हुए भी जैन हैं, उसी प्रकार जैन और बौद्ध एक हैं। जिस प्रकार बाईस टोला, तारणतरण आदि दिगम्बर पारस्परिक मतभेद रखते हुए भी दिगम्बर और जैन हैं, तद्वत् जैन और बौद्ध भी अभिन्न हैं। किन्तु यदि आपको इस पर आपत्ति है, तो हमें कोई आग्रह नहीं और न ही ऋषि दयानन्द को इस विषय में कोई हठ था। उनके सामने उस समय जो सामग्री आई उससे उन्हें जो निष्कर्ष निकलता प्रतीत हुआ उसको उन्होंने लिख दिया। यदि यह भ्रम है तो इस भ्रम के प्रवर्त्तक स्वयं जैन विद्वान् ही हैं। देखिये, स्थानांगवृत्ति के पृष्ठ ३३ में लिखा है:—'अस्यामवसर्पिण्यां चतुर्विंशतेस्तीर्थंकराणां मध्ये चरमतीर्थङ्कर : सिद्धः कृतार्थो जातः बुद्धः केवलज्ञानेन बुद्धवान् बोध्यम्" [इस अवसर्पिणी काल में चौबीस तीर्थङ्करों में से अन्तिम तीर्थङ्कर सिद्ध और बुद्ध हैं]। 'सिद्ध' का अर्थ 'कृतार्थ' और "बुद्ध" का अर्थ 'जिसने जानने योग्य को केवल ज्ञान के द्वारा जाना है' है। बौद्ध

भी इन दानों शब्दों का यही अर्थ करते हैं। अन्यत्र × में हमने दिखलाया है कि ब्रह्मचारी शीतलप्रसाद जी (उनका शरीरान्त हो चुका है) जैसे जैन विद्वान् अब जैन बौद्ध को एक सिद्ध करने के प्रयत्न में हैं। इस प्रकार विवेचक को स्पष्ट दिखाई देता है कि जैन विद्वान् धीरे-धीरे दयानन्द की मान्यताओं को मान्य दे रहे हैं। हां, यह और बात है कि अपने समाज में अपनी प्रतिष्ठा जमाये रखने के लिये वे ऋषि को कुवाच्य कहने से भी नहीं चूकते। वे दयानन्द को प्रत्येक प्रकार का अवद्य वचन कहते जायें किन्तु सुधार की धारा को भी वेगवती करते जायें तो हमें दुःख न होगा।

दूसरों के प्रति जैन व्यवहार

आगे चलने से पूर्व जैनों के विषय में एकाध बात और बतलाना आवश्यक है। सभी मतों वाले इस बात को मानते हैं कि किसी का जी दुखाना हिंसा है। जैन अपने को अहिंसा के परम पालक मानते हैं, किन्तु दूसरों को वे किस दृष्टि से देखते हैं, उनके प्रति कैसे कठोर वचनों का प्रयोग करते हैं इसका एकाध उदाहरण देना अप्रासङ्गिक न होगा। पण्डित दरबारीलाल जैन द्वारा सम्पादित (जैन) 'न्यायदीपिका' के प्राक्कथन के पृष्ठ २ पर यह वाक्य है :— "जैन सम्प्रदाय में जैन परम्परा के मानने वालों को सम्यग्दृष्टि और जैनेतर परम्परा के मानने वालों को मिथ्यादृष्टि कहने का रिवाज प्रचलित है"। दूसरे अर्थात् जैन भिन्न को 'मिथ्यादृष्टि' अर्थात् झूठा कहना गाली है वा नहीं ? गाली सुनने वाले का हृदय दुखाना स्पष्ट हिंसा है। और लीजिये; वेदों के सम्बन्ध में दिगम्बर जैनों के महापुराण के ३९ वें पर्व में जो लिखा है वे उन्हीं के अनुवाद सहित यहां उद्धृत किया जाता है :—'दुःप्रणीतानि तान्यपि' (श्लोक १०) [वास्तव में वे वाक्य दुष्ट पुरुषों के बनाये हुए हैं]। कहिये, जिन वेदों के आगे आज संसार के गण्यमान्य विद्वान् माथा झुका रहे हैं, उनके सम्बन्ध में इस प्रकार के वाक्यों से वेदों को मानने वालों के हृदय दुखेंगे वा नहीं ? अन्यच्च; यज्ञोपवीत धारण करने के पश्चात् एक जैन अन्य धर्म वाले से कहता है :—

× सटिप्पण सत्यार्थ प्रकाश पृष्ठ ३८३-८४ पर की टिप्पणियें देखें।

'पापसूत्रानुगा यूयं न द्विजाः सूत्रकण्ठकाः। सन्मार्गकण्टकास्तीक्ष्णाः केवलं मलदूषिताः' (श्लोक ११८)। इसका जैनकृत अनुवाद :—'आप लोग तो गले में सूत्र धारण कर समीचीन मार्ग में तीक्ष्ण कण्टक बनते हुए पापरूप सूत्र के अनुसार चलने वाले हैं। केवल मल से दूषित हैं, द्विज नहीं हैं' (पृष्ठ ३८०)। यह वचन भी उस महापुराण का है। १२९ वें श्लोक में ब्रह्मा को 'कामगर्दभ', १३३ वें में वैदिकों को 'क्लिष्टाचाराः' तथा 'पापारंभरताः' [कठोर आचार वाले तथा पापकर्मों में प्रीति रखने वाले], १३४ वें में 'पापशास्त्रोपजीविनाम्' [पापमय शास्त्रों से निर्वाह करने वालों का], १३५ वें में 'कर्म्मचाण्डालान्' [कर्म से चाण्डालों को] उपाधियों से सुभूषित करके आदेश किया है कि :— "पार्थिवैर्दण्डनीयाश्च लुण्टाकाः पापपण्डिताः ॥१३६॥ मलिनाचरिता ह्येते कृष्ण-वर्गे द्विजब्रुवाः। जैनास्तु निर्मलाचाराः शुक्लवर्गे मता बुधैः" ॥१३८॥ [राजा ऐसे लुटेरों और पाप में पण्डितों को दंड दें। ये द्विज लोग मलिन आचार का पालन करते हैं और झूठ मूठ ही अपने को द्विज कहते हैं, इसलिये विद्वान् लोग इन्हें कृष्ण वर्ग अर्थात् पापियों के समूह में गर्भित करते हैं और जैन लोग निर्मल आचार का पालन करते हैं, इसलिये शुक्लवर्ग अर्थात् पुण्यवानों के समूह में शामिल किये जाते हैं]।

कितनी मधुरता है इन वाक्यों में !!! अहिंसा का परम आदर्श है न !

इनकी सुमनमाला का एकाध अन्य पुष्प दिखाकर आगे चलेंगे। 'यो जैनसत्काव्यरसानभिज्ञः सोऽयं पशुः पुच्छविषाणहीनः। चरत्यसौ यत्र तृणं कदाचित् तद्भागधेयं परमं पशूनाम्' (चर्चासमाधान में १२० पृष्ठ पर उद्धृत) [जो जैनों के उत्तमकाव्यों के रस का अनभिज्ञ है, वह पुच्छ और श्रृंग से रहित पशु है। वह पशु वहां चरता है, जहां घास हो, यह पशुओं का परम भाग है]। तात्पर्य यह है कि जैनग्रन्थ उत्तम, अजैन ग्रन्थ घास फूस। जो अजैन ग्रन्थ पढ़ता है, वह पशु है। यह है जैनभाषासमिति का आदर्श !!! जैनों से हम इतना पूछना चाहते हैं कि यदि कोई अजैन आपका ऐसे पुष्पों से सत्कार करे तो ?

रामायण महाभारत के सम्बन्ध में भी इनके उद्गार देखिये :—'जैन में भारत रामायण है नाहिं ! परमत के शास्त्र है तिनका निषेध कीना है। तदुक्तं

गोमट्टसारे:—"आभीयमासुरक्ख भारहरामायणादि उवएसा सुयअव्णाणं तिणं वेन्ति"। अस्यायमर्थ :—"आभीतासुरक्षभारतरामायणाद्युपदेशाः" :—आभीत कहिये अंजनादि विद्या के निरूपक चौरनिके शास्त्र असुरक्ष कहिये बधबन्धकादिप्ररूपक कोतवालनि के शास्त्र, भारत कहिये कौरव पाण्डव युद्ध पांच पुरुपनि की एक स्त्री इत्यादि विपरीत कथामय भारत, रामायण कहिये सीताहरण राक्षस बानर का संग्राम इत्यादि राम रावण सम्बन्धी रामायणशास्त्र, ऐसे और भी स्वेच्छा कल्पित प्रवन्ध हैं से तुच्छ कहिये असार हैं परमार्थशून्य हैं। "असाधनीया"—याहीतें सत्पुरुषनिकरि आदर करने योग्य नाहिं। "तत इदं श्रुताज्ञानमिति ब्रुवन्ति"—ऐसे कुशास्त्रनि को सुनिकै मिथ्या ज्ञान उपजै तिसे कुश्रुत नाम आचार्य कहै है। इह जान जैनपुराण विषै में कदाचित् अरुचि न करनी' (चर्चासमाधान पृष्ठ १२०, १२१)। रामायण महाभारत के प्रति कितना विषवमन है। किन्तु आरम्भ इसका मिथ्या कथन से होता है। लिखा है 'जैन में भारत रामायण है नाहिं'। हमें आश्चर्य है कि लेखक को यह कैसे साहस हुआ। जैनों में 'पउमचरिय' ग्रन्थ रामायण का कथानक है। पाण्डवचरित ग्रन्थ महाभारत परक विद्यमान है। हिन्दी तक में जैन रामायण ग्रन्थ विद्यमान है। दूसरों के इतिहासादि को चोरों के शास्त्र कहना मधुर वाणी की पराकाष्ठा है। लेखक को भय लगा कि कहीं जैन जनता असम्भव गपोड़ों से परिपूर्ण जैनपुराणों के श्रवण से भी विरत न हो जाये, अतः अन्तिम वाक्य 'इह जानि के जैन पुराण विषै में कदाचित् अरुचि न करनी' लिखा।

परस्पर विरोध

जैनों के ग्रन्थों में परस्पर विरोध इतना है कि यदि उस पर लिखा जाये तो बड़े बड़े पोथे बन जायें। हम यहां केवल एक उदाहरण देना पर्याप्त समझते हैं। पीछे हम इनका वेदनिन्दा परक वाक्य उद्धृत कर चुके हैं। अब वेदप्रशंसापरक वाक्य भी लीजिये :—"वेदविद्भिरहिंसोक्ता वेदे ब्रह्मनिरूपिते। कल्पवल्लीव मातेव सखीव जगते हिता" (उत्तरपुराण ६७ वां पर्व ३८९ वां श्लोक) [वेद के जानने वालों ने ब्रह्मनिरूपित वेद में अहिंसा को कल्पलता के समान, माता के समान अथवा सखी के समान जगत् का हित करने वाली

बताया है]। यहां वेद को ब्रह्मनिरूपित (परमात्मकृत) कहा है और इसमें अहिंसा का गौरवपूर्ण निरूपण बतलाया है। दोनों कथनों में से एक अवश्य मिथ्या है।

ग्रन्थों को तिलांजलि

ऋषि की समीक्षा से प्रभावित होकर कई एक जैन पण्डित अपने कुछ एक मान्य ग्रन्थों की मान्यता से हाथ खींचने लगे हैं। जैनों के दिगम्बरसम्प्रदाय के मान्य साधु श्री शान्तिसागर के संघ से समादृत सूर्यप्रकाश ग्रन्थ की समीक्षा की भूमिका के निम्नाङ्कित शब्द इसका प्रबल प्रमाण हैं :—'धर्म के नाम पर अनेक जैन लेखक बड़े से बड़ा पाप करने में भी पीछे नहीं हटे हैं। यहां तक कि उन्होंने मनमाने ग्रन्थ बना कर उनके रचयिता भद्रबाहु श्रुतकेवली, कुन्द-कुन्द, उमास्वामी, जिनसेन आदि को बना दिया है। और इस प्रकार जनता की आंखों में धूल फेंकने की असफल चेष्टा की है' (पृष्ठ ९-१०)। स्वामी दयानन्द ने पुराणों के सम्बन्ध में लिखा है कि ये व्यास जी की रचना नहीं हैं, किसी ने या किन्हीं ने व्यास जी के नाम से ये ग्रन्थ कल्पित कर डाले हैं। उन्हीं से प्रेरणा पाकर जैन पण्डित ने ऊपर के शब्द लिखे हैं। अभी और देखिये :—'यह खेद और लज्जा की बात है कि सूर्यप्रकाश सरीखे भ्रष्ट ग्रन्थों के प्रचारक ऐसे लोग हैं जिन्हें कि बहुत से लोग भ्रमवश विद्वान् और मुनि समझते हैं' (पृष्ठ १५)। इसी सूर्यप्रकाश की समीक्षा ग्रन्थ के प्रास्ताविक निवेदन में हमें पढ़ने को मिलता है :—'मैं ऐसे ग्रन्थों को जैन ग्रन्थ नहीं किन्तु जैन ग्रन्थों के कलङ्क समझता हूं' (पृष्ठ ८)। पृष्ठ ९ पर पुनः लिखा है:—'मुनि शान्तिसागरजी के संघ की असीम कृपा से जहां हमें 'चर्चासागर' जैसे ग्रन्थरत्न की प्राप्ति हुई है वहां प्रसादरूप में एक दूसरा ग्रन्थ और भी मिला है जिसका नाम है 'सूर्यप्रकाश'। दोनों का उद्गम स्थान एक ही संघ······'। और पढ़िये :—'आर्यसमाज के साथ शास्त्रार्थों तक में कुछ जैन पण्डितों को यह घोषित कर देना पड़ा है कि हम इन त्रिवर्णाचार जैसे ग्रन्थों को प्रमाण नहीं मानते हैं' (पृष्ठ ३)। बहुत अच्छी बात है, किन्तु क्या ही अच्छा होता कि आप ऐसे सभी ग्रन्थों का नामोल्लेख कर देते। एक बात स्मरण रखने की है कि जब तक एक भी जैन इन ग्रन्थों को मान रहा है इनको जैनग्रन्थ ही कहा जायेगा। अस्तु, जो भी हो, अन्तिम सन्दर्भ में ऋषि का प्रभाव स्पष्ट शब्दों में स्वीकार किया गया है।

जैन आगम वास्तविक स्थिति में नहीं है

तनिक जेन-शास्त्रों की दशा पर भी विचार कर लेना आवश्यक है। जैन अपने मूल ग्रन्थों को आगम कहते हैं। वे आज अपनी वास्तविक स्थिति में नहीं हैं। जैनों की मान्यता है कि जैन-आगमों के अर्थों के प्रणेता-वक्ता तीर्थङ्कर हैं, शब्दों के नहीं। शब्दों के प्रणेता तो गोतम आदि गणधर हैं। जैसा कि बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय के जैनदर्शनाध्यापक पण्डित श्रीदलसुख मालवणिया ने अपनी लिखी 'जैन आगम' नामक लघु पुस्तिका में लिखा है :—'फलितार्थ यह है कि ग्रन्थवद्ध उपदेश का जो तात्पर्य है उसके प्रणेता जिन-वीतराग-तीर्थङ्कर हैं, किन्तु जिस रूप में वह उपदेश ग्रन्थवद्ध या सूत्रबद्ध हुआ उस शव्दरूप के प्रणेता गणधर ही हैं। जैनागम तीर्थङ्करप्रणीत कहा जाता है। उसका मतलव यह है कि ग्रन्थार्थप्रणेता वे थे, सूत्रकार नहीं।...जैन-श्रुति के अनुसार तीर्थङ्करोक्त के समान अन्य प्रत्येक वुद्धोक्त आगम भी प्रमाण है' (पृष्ठ ५)। इस पर टिपप्णी में निम्नलिखित प्रमाण वाक्य उद्धृत किये गये हैं :—'अत्थं भासइ अरहा सुत्तं गन्थन्ति गणहरा निउणं। सासणस्य हियट्ठाय तओ सुत्तं पवत्तेई॥१९२॥ आव० नि० सुत्तं गणहरकथिदं तहेव पत्तेयवुद्धकथिदं च। सुदकेवलिणा कथिदं अभिन्न-दसपुव्व कथिदं च॥ (मूलाधार ५। ७८०; जयधवला पृष्ठ १५३; ओघनिर्युक्ति टीका पृष्ठ ३)। भाव :—इससे सिद्ध हुआ कि वर्तमान उपलभ्यमान जैन-आगम तीर्थंकरप्रणीत नहीं प्रत्युत गणधरों की रचना हैं। उक्त पण्डित जी ने इसी पृष्ठ ५ पर इसे इस प्रकार स्वीकार किया है :—"अभी उपलब्ध जो आगम हैं वे स्वयं गणधरकथित आगमों की संकलना हैं'। अर्थात् जैन-आगम आज उस रूप में नहीं हैं जिस रूप में गणधर महात्माओं ने इनकी रचना की। मालवणिया जी इस बात को इन शब्दों में प्रकट करते हैं :—'किन्तु जिस रूप में भगवान् के उपदेश को गणधरों ने ग्रथित किया वह रूप आज हमारे पास नहीं है।... अतः ब्राह्मणों की तरह जैनाचार्य और उपाध्याय अंगग्रन्थों की अक्षरशः सुरक्षा नहीं कर सके हैं। इतना ही नहीं किन्तु कई सम्पूर्ण ग्रन्थों को भूल चुके हैं और कई ग्रन्थों की अवस्था विकृत कर दी है......। उनमें परिवर्तन और परि-वर्धन हुआ है' (पृष्ठ ८)। स्पष्ट सिद्ध है कि वर्तमान जैन-आगम असली नहीं हैं। दिगम्बर जैन तो आगमों को लुप्त हुआ मानते हैं जैसा कि मालवणिया जी

ने लिखा है :—'दिगम्बरों ने तो अमुक समय के बाद तीर्थंकरप्रणीत आगम का सर्वथा लोप ही माना" (पृष्ठ ८)।

बौद्धों की भांति जैनों ने भी अपने तीर्थंकरों के तथाकथित उपदेशों की रक्षा के लिये भिन्न-भिन्न समयों पर तीन सभायें कीं।× उनके सम्बन्ध में मालवणिया जी ने लिखा है :—'जब जब आचार्यों ने देखा कि श्रुत ह्रास हो रहा है, उसमें अव्यवस्था हो गई है, तब तब जैनाचार्यों ने एकत्र होकर जैनश्रुत को व्यवस्थित किया है' (पृष्ठ १०)। तात्पर्य यह कि आज के जैनागम भगवान् महावीर व उनके गणधरों के भाषित नहीं हैं। मालवणिया जी ने लिखा है:—'भगवान् महावीर के निर्वाण से करीब १६० वर्ष बाद पाटलिपुत्र में लम्बे समय के दुर्भिक्ष के बाद जैनश्रमणसंघ एकत्रित हुआ। उन दिनों मध्यदेश में अनावृष्टि के कारण जैनश्रमण तितर-बितर हो गये थे, अतएव अंगशास्त्र की दुरवस्था होना स्वाभाविक ही है। एकत्रित हुए श्रमणों ने एक दूसरे से पूछपाछ कर ११ अंगों को व्यवस्थित किया। किन्तु देखा गया है कि उनमें से किसी को भी सम्पूर्ण दृष्टिवाद का पता न था' (पृष्ठ ११)। अर्थात् पहली वाचना में उन सब ग्रन्थों का संकलन नहीं हो सका, जो गणधरप्रणीत माने जाते थे। इसे मालवणिया जी ने इस प्रकार स्वीकारा है :—'सारांश यह है कि गणधर ग्रथित १२ अंगों में से प्रथम वाचना के समय चार पूर्व न्यून १२ अंग श्रमणसंघ के हाथ लगे, क्योंकि स्थूलभद्र यद्यपि सूत्रत: सम्पूर्ण श्रुत के ज्ञाता थे, किन्तु उन्हें चार पूर्व की वाचना दूसरों को देने का अधिकार नहीं था। अतएव तब से संघ में श्रुतकेवली नहीं किंतु दशपूर्वी हुए और अंगों में से उतने ही श्रुत की रक्षा का प्रश्न था' (पृष्ठ १२)।

अभी जैनागमों का और ह्रास हुआ। इसे मालवणिया जी के शब्दों में पढ़िये :—'श्वेताम्बरों के मत से दशपूर्वीओं की परम्परा का अन्त आचार्य वज्र

×मालवणिया जी लिखते हैं :—'बौद्ध इतिहास में भगवान् बुद्ध के उपदेश को व्यवस्थित करने के लिये भिक्षुओं ने कालक्रम से तीन संगीतियां की थीं यह प्रसिद्ध है। उसी प्रकार भगवान् महावीर के उपदेश को भी व्यवस्थित करने के लिये जैन आचार्यों ने भी मिलकर तीन वाचनायें की हैं' (पृष्ठ ८)।

के साथ हुआ' (पृष्ठ १२)। 'आर्यरक्षित के बाद श्रुत का पठनपाठन पूर्ववत् नहीं चला होगा। और उसमें पर्याप्त मात्रा में शिथिलता हुई होगी, यह उक्त बात से स्पष्ट है। अतएव श्रुत में उत्तरोत्तर ह्रास होना भी स्वाभाविक है। स्वयं आर्यरक्षित के लिये भी कहा गया है कि वे सम्पूर्ण नव पूर्व और दशम पूर्व के २४ यविक मात्र के अभ्यासी थे'। 'आर्यरक्षित भी अपने सभी शिष्यों को यावत् श्रुतज्ञान देने में असमर्थ ही हुए। उनकी कथा में कहा गया है कि उनके शिष्यों में से सिर्फ दुर्बलिका पुष्यमित्र ही सम्पूर्ण नव पूर्व पढ़ने में समर्थ हुआ, किन्तु वह भी उसका अभ्यास न कर सकने के कारण नवम पूर्व को भूल गया। उत्तरोत्तर पूर्वों के विशेष पाठियों का ह्रास होकर एक समय ऐसा आया जब पूर्वों का विशेषज्ञ कोई नहीं रहा' (पृष्ठ १४)। 'नन्दीसूत्र की चूर्णि में लिखा है कि द्वादशवर्षीय दुष्काल के कारण ग्रहण-गुणन-अनुप्रेक्षा के अभाव में सूत्र नष्ट हो गया। आर्य स्कन्दिल के सभापतित्व में बारह वर्ष के दुष्काल के बाद साधुसंघ मथुरा में एकत्र हुआ और जिसको जो याद था उसके आधार पर कालिक श्रुत को व्यवस्थित कर लिया गया।.........कुछ लोगों का कहना है कि सूत्र तो नष्ट नहीं हुआ किन्तु प्रधान अनुयोगधरों का अभाव हो गया। सिर्फ स्कन्दिल आचार्य ही बचे थे जो अनुयोगधर थे। उन्होंने क्योंकि मथुरा में अन्य साधुओं को अनुयोग दिया अतएव माथुरी वाचना कहलाई।.......इस वाचना के फलस्वरूप आगम लिखे भी गये' (पृष्ठ १४)। 'जब मथुरा में वाचना हुई थी उसी काल में वलभी में भी नागार्जुन और सूरि ने श्रमणसंघ को एकत्र करके आगमों को व्यवस्थित करने का प्रयत्न किया था। और "वाचक नागार्जुन और एकत्रित संघ को जो-जो आगम और उनके अनुयोगों के उपरान्त प्रकरण ग्रन्थ याद थे वे लिख लिये गये और विस्तृत स्थलों को पूर्वापर सम्बन्ध के अनुसार ठीक करके उसके अनुसार वाचना दी गई"। इसमें प्रमुख नागार्जुन थे अतएव इस वाचना को "नागार्जुन वाचना" भी कहते हैं' (पृ० १४-१५)। उपर्युक्त वाचनाओं के सम्पन्न हुए करीब डेढ़ सौ वर्ष से अधिक समय व्यतीत हो चुका था, उस समय फिर वलभी नगर में देवर्धिगणिक्षमाश्रमण की अध्यक्षता में श्रमणसंघ इकट्ठा हुआ था और पूर्वोक्त दोनों वाचनाओं के समय लिखे गये सिद्धान्तों के उपरान्त जो-जो ग्रन्थ प्रकरण मौजूद थे उन सबको लिख कर

सुरक्षित करने का निश्चय किया। इस श्रवणसमवसरण में दो वाचनाओं के सिद्धान्तों का परस्पर समन्वय किया गया और जहां तक हो सका, भेदभाव मिटा कर उन्हें एक रूप कर दिया, और जो महत्वपूर्ण भेद थे उन्हें पाठान्तर के रूप में टीका चूर्णियों में संगृहीत किया। कितनेक प्रकीर्णक जो केवल एक ही वाचना में थे वैसे के वैसे प्रमाण माने गये।......वर्तमान में जो आगम ग्रन्थ उपलब्ध हैं उनका अधिकांश इसी समय में स्थिर हुआ था। नन्दीसूत्र में जो सूची है उसे ही यदि वलभी में पुस्तकारूढ़ सभी आगमों की सूची माना जाये तब कहना होगा कि कई आगम उक्त लेखन के बाद भी नष्ट हुए हैं। खासकर प्रकीर्णक तो अनेक नष्ट हो गये हैं। सिर्फ वीरस्तव नामक एक प्रकीर्णक और पिण्डनियुंक्ति ऐसे हैं जो नन्दीसूत्र में उल्लिखित नहीं हैं, किन्तु श्वेताम्बरों को आगमरूप से मान्य हैं' (पृष्ठ १५-१६)। 'दिगम्बर और श्वेताम्बर दोनों के मत से पूर्वों का विच्छेद हो गया है' (पृष्ठ १६)। 'पूर्व के ही आधार पर जब सरल रीति से ग्रन्थ बने तब पूर्वों के अध्ययन-अध्यापन की रुचि कम होना स्वाभाविक है। और यही कारण है कि सर्वप्रथम विच्छेद भी उसका हुआ' (पृ० १६)। 'तीनों सम्प्रदायों के मत से अन्तिम अंग दृष्टिवाद का सर्वप्रथम लोप हो गया है' (पृष्ठ १७)। 'उक्त अंग के अतिरिक्त १४ अंगबाह्य आगमों की रचना भी स्थविरों ने की थी, ऐसा मानते हुए भी दिगम्बरों का कहना है कि उन अंगवाह्यागमों का भी लोप हो गया है' (पृ० १८)।

हमने पर्याप्त उद्धरण दे दिये हैं जिन से निर्विवाद सिद्ध होता है कि (१) तथाकथित जैनागम भगवान् महावीर के भाषित शब्दमय नहीं हैं। (२) ये गणधरों के भी शब्द नहीं है 'उसकी भाषा में वह प्राकृत होने के कारण परिवर्तन होना स्वाभाविक ही है' (पृष्ठ ८)। 'भाषा में यत्र-यत्र काल की गति और प्राकृत भाषा होने के कारण भाषाविकास के नियमानुसार परिवर्तन होना अनिवार्य है' (पृष्ठ २२-२३)। (३) इनमें पीछे होने वाले प्रत्येक वृद्धों, स्थविरों आदि की रचनायें भी सम्मिलित हैं। (४) इनमें परस्पर विरोध भी आ गया है।

जैनागमों की सूची

द्वादशांग—१. आचार, २. सूत्रकृत, ३. स्थान, ४. समवाय, ५. व्याख्या-

प्रज्ञप्ति॥, ६. ज्ञातृधर्म्मकथा, ७. उपसक दशा, ८. अन्तकृद्दशा, ९. अनुत्त-रौपपातिकदशा, १०. प्रश्नव्याकरण, ११. विपाकसूत्र, १२. दृष्टिवाद+

उपांग—१. +औपपत्तिक २. राजप्रश्नीय, ३.जीवाभिगम, ४. प्रज्ञापना, ५. सूर्यप्रज्ञप्ति, ६. जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति, ७. चन्द्रप्रज्ञप्ति, ८. निरयावली, ९. कल्पावतंसिका, १०. पुष्पिका, ११. पुष्पचूलिका, १२. वृष्णिदशा ×।

छेद—१. व्यवहार, २. बृहत्कल्प, ३. निशीथ, ४. दशाश्रुतस्कन्ध ÷।

मूल—१. दशवैकालिक, २. उत्तराध्ययन, ३. नन्दी, ४. अनुयोग। और ५. आवश्यक।

इस प्रकार सब मिल कर २१ अंगबाह्य स्थानकवासी सम्प्रदाय के मान्य हैं।

'स्थानकवासी के समान उसी सम्प्रदाय के एक उपसम्प्रदाय तेरहपन्थ को भी १२ अंग और २१ अंगबाह्य ग्रन्थों का ही अस्तित्व और प्रामाण्य स्वीकृत है अन्य ग्रन्थों का नहीं' (जैन आगम पृष्ठ २०)। 'इन दोनों सम्प्रदायों में निर्युक्ति आदि टीका ग्रन्थों का प्रामाण्य अस्वीकृत है' (जैन आगम पृष्ठ २०)।

अब श्वेताम्बरों के मतानुसार आगमसूची इस प्रकार है :—अंग पूर्वोक्त १२; उपांग औपपत्तिक आदि पूर्वोक्त १२; इनके बाईस अन्य ग्रन्थ :—

दस प्रकीर्णक†—१. चतुः शरण, २. आतुरप्रत्याख्यान*, ३. भक्त प्ररिज्ञा

॥ सत्यार्थप्रकाश की भूमिका में इसके स्थान में 'भगवतीसूत्र' नाम दिया है। यह नामान्तर है, ग्रन्थान्तर नहीं।

+ सत्यार्थप्रकाश में ये सारे नाम प्राकृत भाषा के अनुसार दिये गये हैं।

× सत्यार्थप्रकाश में इसका 'कप्पियासूत्र' नाम है।

÷ सत्यार्थप्रकाश की भूमिका में छेद छह गिनाये हैं।

† मालवणिया जी ने अपने ग्रन्थ के २१ पृष्ठ की टिप्पणी संख्या २ में लिखा है :—"दश प्रकीर्णक कुछ परिवर्तन के साथ भी गिनाये जाते हैं"। सत्यार्थप्रकाश में इनको दस पयन्ना सूत्र कहा गया है। नाम वहां प्राकृत में दिये गये हैं।

* सत्यार्थप्रकाश का 'पचखान' यहां 'आतुरप्रत्याख्यान' है।

४. संस्तारक‡, ५. तन्दुलवैचारिक, ६. चन्द्रवेध्यक्ष, ७. देवेन्द्रस्तव, ८. गणि-विद्या, ९. महाप्रत्याख्यान, १०. वीरस्तव卐।

छह छेदसूत्र—१. निशीथ, २. महानिशीथ, ३. व्यवहार, ४. दशाश्रुत-स्कन्ध, ५. बृहत्कल्प, ६. जीतकल्प◎।

चार मूल*—१. उत्तराध्ययन, २. दशवैकालिक, ३. आवश्यक, ४. पिंड-निर्युक्ति।

दो चूलिकासूत्र—१. नन्दीसूत्र, २. अनुयोगद्वारसूत्र ×।

दिगम्वरमतानुसार जैनागमों की सूची

द्वादश अंग तो यही हैं किन्तु वे सब लुप्त हो चुके हैं। उनके मत में यह चौदह अंगवाह्य आगम + हैं :—१. सामायिक, २. चतुर्विंशतिस्तव, ३. वंदना, ४. प्रतिक्रमण, ५. वैनयिक, ६. कृतिकर्म्म, ७. दशवैकालिक, ८. उत्तराध्ययन, ९. कल्पव्यवहार, १०. कल्पाकल्पिक, ११. महाकल्पिक, १२. पुण्डरीक, १३. महापुण्डरीक, १४. निशीथिका +।

"दिगम्बरों ने मूलागम का लोप मानकर भी कुछ ग्रन्थों को आगम जितना ही महत्व दिया है, और उन्हें जैन वेद की संज्ञा देकर प्रसिद्ध चार अनु-योगों में विभक्त किया है। वे इस प्रकार हैं :—

१. प्रथमानुयोग—पद्मपुराण (रविषेणकृत), हरिवंशपुराण (जिनसेन-कृत), आदिपुराण (जिनसेनकृत), उत्तरपुराण (गुणभद्रकृत)।

---

‡ सत्यार्थप्रकाश का 'संसारसूत्र' यहां 'संस्तारक' है।

卐 सत्यार्थप्रकाश का 'मरणसमाधि' यहां 'वीरस्तव' है।

◎ सत्यार्थप्रकाश के नामों से यहां कुछ भेद है।

* अपने ग्रन्थ के २१ पृष्ठ की तीसरी टिप्पणी में मालवणिया जी लिखते हैं :—"किसी के मत में 'ओघनिर्युक्ति' भी इनमें समाविष्ट है। कोई 'पिण्डनिर्युक्ति' के स्थान में 'ओघनिर्युक्ति' मानते हैं"।

× सत्यार्थप्रकाश में दूसरे का नाम 'योगोद्धारसूत्र' दिया है।

+ 'दिगम्बरों का कहना है कि उन अंगवाह्यागमों का भी लोप हो गया है' (जैन आगम पृष्ठ १८)।

२. करणानुयोग—सूर्यप्रज्ञप्ति, चन्द्रप्रज्ञप्ति, जयधवल ।

३. द्रव्यानुयोग—प्रवचनसार, समयसार, नियमसार, पञ्चास्तिकाय (ये चारों कुन्दकुन्दकृत), तत्त्वार्थाधिगमसूत्र (उमास्वामिकृत) और उसकी समन्तभद्र, पूज्यपाद, अकलक, विद्यानन्द आदि कृत टीकायें, आप्तमीमांसा (समन्तभद्रकृत) और उसकी अकलंक, विद्यानन्द आदि कृत टीकायें ।

४. चरणानुयोग—मूलाचार (वट्टकेर), त्रिवर्णाचार, रत्नकरण्डश्रावकाचार ।

"इस सूची से स्पष्ट है कि इसमें दशवीं शताब्दी तक लिखे गयें ग्रन्थ सम्मिलित हैं" (पृष्ठ १९) ।

तत्त्वार्थाधिगम की समन्तभद्रकृत टीका के सम्बन्ध में मालवणिया जी ने लिखा है कि वह 'अनुपलब्ध है' ।

वेद आज तक अपरिवर्तित एवं सुरक्षित

यह दिखाया जा चुका है कि न जैनों के धर्म्मग्रन्थ अपने मूलरूप में विद्यमान हैं और न ईसाइयों के। बेचारे पारसियों का धर्म्मग्रन्थ भी आज संपूर्ण नहीं मिलता । प्रश्न होता है, वेद की क्या दशा है ? इसका उत्तर हम अपनी ओर से न देकर सदा वेद विरोध में प्रवृत्त जैनों के एक मान्य विद्वान् की ओर से देते हैं । पण्डित श्री दलसुख मालवणिया अपने 'जैन-आगम' निबन्ध में लिखते हैं :—"ऋग्वेदादि वेदों की सुरक्षा भारतीयों का अद्भुत पराक्रम है । आज भी भारतवर्ष में ऐसे सैंकड़ों ब्राह्मण वेदपाठी मिलेंगे जो आदि से अन्त तक वेदों का शुद्ध उच्चारण कर सकते हैं । उनको वेदपुस्तक की आवश्यकता नहीं, किन्तु वेद के अर्थ की परम्परा उनके पास नहीं वेदपाठ की परम्परा अवश्य है"… ………। 'भूतकाल में जो बाधायें जैनश्रुत के नाश में कारण हुई, क्या वे वेद का नाश नहीं कर सकती थीं ? क्या कारण है कि जैनश्रुत से भी प्राचीन वेद÷ तो सुरक्षित रह सका और जैनश्रुत सम्पूर्ण नहीं तो अधिकांश नष्ट हो गया ? इन प्रश्नों का उत्तर सहज ही है' ।

÷वेदों में अपने तीर्थंकरों का नाम ढूंढने का वृथा प्रयास करने वाले जैन विद्वान् इसे ध्यान से पढ़ें । यह एक लब्धप्रतिष्ठ जैन विद्वान् का लेख है ।

"वेद की सुरक्षा में दोनों प्रकार की वंशपरम्पराओं ने सहकार दिया है। जन्मवंश की अपेक्षा पिता ने पुत्र को और उसने अपने पुत्र को तथा विद्या-वंश की अपेक्षा गुरु ने शिष्य को और उसने अपने शिष्य को वेद सिखाकर वेदपाठ की परम्परा अव्यवहित गति से चालू रखी है।..................... ....ब्राह्मण को अपना सुशिक्षित पुत्र और वैसा ही सुशिक्षित शिष्य प्राप्त होने में कोई कठिनाई नहीं।..................वेद की सुरक्षा एक वर्ण विशेष+से हुई है। जिनका स्वार्थ×उनकी सुरक्षा में ही था।............... वेद का अधिकारी ब्राह्मण अधिकार पाकर उससे बरी नहीं हो सकता अर्थात् उसके लिये जीवन की प्रथमावस्था में नियमतः वेदाध्ययन आवश्यक था, अन्यथा ब्राह्मण समाज में उसका कोई स्थान न था।........... ब्राह्मण के लिये वेदाध्ययन सर्वस्व था।"

(३)

ईसाई मन्तव्यों की आधार-शून्यता

तेरहवें समुल्लास में ईसाइयों के मूलाधार ग्रन्थ बाईबल की समीक्षा है। उस बाईबल के सम्बन्ध में निम्नलिखित बातों को सावधानता से पढ़ना चाहिये। यह प्रसंग एक ईसाई पादरी के ग्रन्थ के आधार से लिखा गया है। ईसाई प्रचारक बलपूर्वक इस बात का प्रतिपादन करते हैं कि बाईबल पर-

---

+लेखक की यह बात अशुद्ध है। ब्राह्मणों के अतिरिक्त क्षत्रिय आदि ने भी वेदरक्षा (कण्ठस्थ रखकर) करने में पूरा भाग लिया है। पंजाब के खत्रियों में एक वर्ग का नाम 'वेदी' है। सिखों के आद्य गुरु बाबा नानक का जन्म इसी वेदी वंश में हुआ था। गुरु गोविन्दसिंह जी ने 'वेदी' संज्ञा पड़ने का कारण यह बताया है कि बाबाजी के एक पूर्वज ने अयोध्या के एक राजा को सामगान सुनाया था। अतः यह कहना भ्रम है कि वेद की सुरक्षा केवल ब्राह्मणों ने की। हां, निःस्सन्देह इस कार्य्य में उनका भाग सबसे अधिक है।

×यह बात भी अशुद्ध है, महाभाष्य (१।१।१ आ०) में एक पुरातन का वचन दिया है:—'ब्राह्मणेन निष्कारणो धर्मः षडङ्गो वेदोऽध्येयो ज्ञेयश्च' [ब्राह्मण को निस्वार्थ भाव से छहों अंगों सहित वेद को पढ़ना और समझना चहिये]।

मात्मा के समय-समय पर अपने चुने हुए पैगम्बर को दिये हुए सन्देशों का संग्रह है, दूसरे शब्दों में वे इसे परमात्मा की रचना मानते हैं। किन्तु विद्वान् विचारक अपने आपको इसे ऐसा स्वीकार करने में असमर्थ पाते हैं जिसके निम्नलिखित कारण हैं :—

(१) बाईबल में ऐसी बहुत सी सामग्री पाई जाती है जो बाईबल की पुरानी से पुरानी पोथी से भी पूर्ववर्त्ती किसी धर्म्मग्रन्थ वा सामान्य ग्रन्थ में विद्यमान है। डा० जे० टी० सण्डरलैण्ड अपनी पुस्तक 'The Origin and Character of the Bible' के पृष्ठ १८ पर लिखते हैं :—"Jews and Christians once devoutly believed that the Hebrew sacrificial system was a special revelation of God to his chosen people. But a study of the religions of the mankind shows that the system, was closely parallel to those of many pagan nations. The Christian ideas of sacrifice and atonement have their antecedent not merely in Judaism, but in the world of primitive religion in general.

"*Circumcision,* practiced by the Jews, was not original with them, but was common among most Semitic people. It was practiced in Egypt long before the Jewish had an existence.

"The rite of *baptism,* that is, a purifying ablution in water, existed long before the time of Jesus, and in many parts of the world besides Palestine.

"The use of sacred symbols more or less resembling a *cross* is much older than Christianity and common to many lands. A sacramental meal, analogous to the *Eucharist* or Lord's supper, is found in some form in many other religions.

"The ideas of a *Divine Incarnation*, and that of a *miraculously born god-man* are found in many religions and Bibles. The mythologies of Greece and Rome abound in stories of the children of the gods born of human mothers, or whose births were attended by sign and wonder..............only in the first two chapters of the Gospels according to Matthew and Luke is there any reference to Jesus' birth, only in Matthew is he virgin-born, only in the prologue to the fourth Gospel is he declared the incarnation of a divine principle."

"यहूदियों तथा ईसाईयों का एक समय दृढ़ विश्वास था कि इब्रानी (यहूदी) कुर्बानी-पद्धति परमात्मा का अपने* चुने लोगों के प्रति एक विशेष इल्हाम था। किन्तु मनुष्य जाति के विभिन्न मतों का अध्ययन यह दर्शाता है कि यह पद्धति तो अनेक अन-ईसाई जातियों में समानरूप से प्रचलित थी। कुर्बानी और किफारा सम्बन्धी ईसाई विचारधारा का मूल न केवल यहूदियत में विद्यमान है वरन् संसार के आरम्भिक मतों में सामान्य रूप से है।

"खुतना जिसका यहूदियों में चलन है, वह भी उनका मौलिक नहीं है, वरन् अनेक सामी जातियों में यह प्रचलित था। जब यहूदी जाति का अस्तित्व भी नहीं हुआ था, उससे बहुत पूर्व इसका मिश्र देश में व्यवहार था।

"बपतिस्मा की रीति, जल में पवित्रताकारक स्नान, ईसा के समय से बहुत-बहुत पहले प्रचलित थी, और पैलेस्टाईन के अतिरिक्त संसार के अनेक‡ भागों में इसका प्रचार था।

"क्रास से न्यूनाधिक मिलने-जुलने वाले धार्मिक चिह्नों का व्यवहार

---

*यहूदी अपने को परमात्मा का चुना हुआ वर्ग मानते हैं। ‡आर्यों के संस्कारों विशेषकर यज्ञोपवीत, वेदारंभ, वानप्रस्थ तथा संन्यास की दीक्षा में विशेष प्रकार का स्नान (अभिषेक) एक अनविार्य अंग है।

ईसाइयत की अपेक्षा बहुत अधिक पुराना है और अनेक देशों में समान रूप से है।

"यूखरिस्ट अथवा 'ईसा का भोजन' से मिलता-जुलता संस्कार-संबन्धी भोजन अनेक दूसरे मतों में किसी न किसी रूप में पाया जाता है।

"दैवी अवतार का विचार और चामत्कारिक रूप से उत्पन्न देव-मनुष्य की भावना भी अनेक मतों और धर्मग्रन्थों में उपलब्ध हैं। यूनान तथा रोम की देवमाला-आख्यायिकायें मानवी स्त्रियों से उत्पन्न देवपुत्रों तथा ऐसों की कथाओं से जिनकी उत्पत्ति के समय चिह्नों और चमत्कारों का आविर्भाव हुआ, भरी पड़ी हैं।..................केवल 'मंत्तो' तथा 'लूका' के सुसमाचारों के प्रथम दो अध्यायों में ईसा जन्म का संकेत है। केवल 'मत्ती' में ही उसे कुमारीपुत्र कहा गया है, और केवल चौथे सुसमाचार की प्रस्तावना में उसे (ईसा को) दैवीशक्ति का अवतार कहा गया है।"

पुनः इसी पुस्तक के पृष्ठ १६ पर हिमिगान्सन के आधार से लिखा है:—"The Easter and Christmas were kept as spring and autumn festivals, centuries before our era, by Egyptians, Persians, Saxons, Romans........" [हमारे ईसाई संवत् के आरम्भ से शतियों पूर्व मिश्री, ईरानी, सैक्सन तथा रोमन लोग ईस्टर और क्रिस्मस को वसन्त और शरद् के त्योहारों के रूप में मानते थे.......]।

आज के विचारशील ईसाई ऐतिहासिक विद्वान् बाईबल को परमात्मा का वचन नहीं मानते। पादरी सण्डरलैण्ड अपने ग्रन्थ के पृष्ठ ८४ पर कट्टरपन्थी प्रोफेसर लैड के ग्रन्थ "What is the Bible" (१८८८ में प्रकाशित) के पृष्ठ २२७ से यह उद्धरण देते हैं :—'We have no claim to historic infallibility set up in the Bible, or even to unusual freedom from errors of an historical kind. Neither does it appear that God has ever revealed to men, the exact character and order of past events, where no record of the events themselves has been kept. For their facts, the sacred authors of the biblical histories, appear

always to have been dependent upon the ordinary resources. Some things of their own time they witnessed for themselves, or learned from others who had witnessed them; other things they accepted as currently reported. There were traditions, oral and written, which claimed to give an account of what had taken place in the more remote past. The later writers had for use the documents and books composed by the earlier ones. The biblical historians possessed, in brief, just such kinds of sources of information with respect to previous events, as ancient historians generally possessed." [हम बाईबल में ऐतिहासिक निर्दोषता का पक्ष नहीं ले सकते, अथवा ऐतिहासिक ढंग की भूलों से भी असाधारण अभाव का परिग्रह नहीं कर सकते । न ही यह प्रतीत होता है कि जिन घटनाओं का कोई अभिलेख नहीं रखा गया, उन अतीत घटनाओं के वास्तविक स्वरूप और क्रम के विषय में परमात्मा ने मनुष्यों को इल्हाम दिया हो । अपने तथ्यों के लिये बाईबल की ऐतिहासिक घटनाओं के पवित्र लेखक सदा ही साधारण साधनों पर आश्रित हुए प्रतीत होते हैं । अपने समय की कुछ बातों को उन्होंने स्वयं देखा अथवा उनसे सीखा, जिन्होंने उनको देखा था । दूसरी बातों को उन्होंने वैसे मान लिया जैसे उनके समय में प्रचलित थीं । कुछ मौखिक एवं लेखबद्ध परम्परायें थीं, जो अधिक पुरातन अतीत की घटनाओं का परिचय देने का दावा करती थीं । पश्चात्तन लेखकों के पास पूर्ववर्ती लेखकों के ग्रन्थ और लेख उपयोग के लिये थे । संक्षेप में, बाईबल-गत इतिहास-लेखकों के पास, पुरातन घटनाओं के सम्बन्ध में ऐसे ही सूचनासाधन थे, जैसे सामान्यतः पुरातन-इतिहास-लेखकों के पास थे] ।

तात्पर्य यह कि बाईबल में वर्णित इतिहास न तो शुद्ध-निर्दोष है और न परमात्मप्रदत्त है । उसके लेखकों में इतर इतिहास लेखकों से कोई विशेषता नहीं थी । उन्होंने भी उन्हीं साधनों का उपयोग किया, जिनका अन्य ऐतिहासिकों ने ।

पादरी सण्डरलैंड इसके पश्चात् बाईबलवर्णित इतिवृत्त को सबसे अधिक विश्वसनीय बताकर अपनी पुस्तक में लिखते है :—"...but at the same time, that it contains, under the name of history, much that is only traditions and legend and not infrequently it makes mistakes as to fact." (पृष्ठ ८४) [किन्तु इसके साथ ही इसमें (बाईबल में) इतिहास के नाम पर अधिकतर वह कुछ है जो केवल उपाख्यान और कहानी है और प्रायः इसमें तथ्यसंबन्धी भूलें भी हैं]।

इस प्रकार दो ईसाई विद्वान् बाईबल में इतिहास-संबन्धी भूल मान रहे हैं। क्या सर्वज्ञ परमेश्वर को इतिहास भी शुद्धरूप में ज्ञात नहीं था!! शान्तं पापम् !!!

इसी पुस्तक के पृष्ठ २१ की टिप्पणी में प्रो० जे० महाफी का एक उद्धरण दिया गया है। हम उसका प्रथम वाक्य यहां देते हैं :—"There is scarcely a great and fruitful idea in the Jewish or Christian systems which has not its analogy in the Egyptian faith." [यहूदी एवं ईसाई पद्धति में कदाचित् ही कोई ऐसा महान् एवं फलवान् विचार हो जिसका अनुरूप मिश्री मत में न हो]।

(२) बाईबल नामक ग्रन्थ समुदाय की विविध पोथियों में से अनेकों को एक एक की रचना अनुभव नहीं करते, प्रत्युत एक एक पोथी को वह अनेकों द्वारा प्रतिसंस्कृत हुई अनुभव करते हैं। अपने ग्रन्थ के पृष्ठ ४४ पर डा० सण्डरलैण्ड ने लिखा है :—"Few are the books in the Old Testament or New that do not show traces of more than one hand." [पुराने धर्म्म नियम अथवा नये में थोड़ी सी पोथियां ऐसी हैं जिनमें एक से अधिक का हाथ लक्षित न होता हो]। इस संबन्ध में हम यहां प्रोफेसर चार्लेस ए० ब्रिग्स का वचन उद्धृत करते हैं :—"It may be regarded as the certain result of the science of the Higher Criticism, that Moses did not write the Pentateuch or Job; Ezra did not write the Chronicles Ezra or Nehemiah; Jeremiah did not write the Kings or Lamentations;

David did not write the Psalms, but only a few of the Psalms; Solomon did not write Song of Songs or Ecclesiastes, and only a portion of the Proverbs; Isaiah did not write half of the book that bears his name. The great mass of the Old Testament was written by authors whose names and connection with their writings are lost in to oblivion." [उच्चतर आलोचना-विज्ञान का यह निश्चित परिणाम चाहिये कि मूसा ने उत्पत्ति आदि पांच पुस्तकें वा याकूब नहीं लिखी; एजरा ने इतिहास, एजरा वा नेहेम्याह नहीं लिखे; जेरम्याह ने 'राजाओं का वृत्तान्त अथवा विलाप' नहीं लिखा; दाऊद ने समस्त भजनसंहिता नहीं लिखी, किन्तु कुछ एक भजन लिखे; सुलैमान ने श्रेष्ठगीत अथवा सभोपदेशक नहीं लिखे, केवल नीति वचनों का कुछ अंश ही लिखा; ईसियाह ने, उसके नाम से प्रसिद्ध पोथी का आधा भाग भी नहीं लिखा। पुराने धर्म्मनियम का बहुत अधिक भाग ऐसे लेखकों का लिखा हुआ है, जिनके नाम तथा उन लेखों के साथ संबन्ध अज्ञान के गर्त में लुप्त हो गये हैं]।

पृष्ठ ४७ पर वह पुन: लिखते हैं :—"Thus we have writings in the Bible ascribed to various persons, as Moses, David, Solomon, Daniel and more than one of the apostles, which could not possibly have been written by these men but are clearly the production of the later ages." [इस प्रकार बाईबल में हम ऐसे लेख पाते हैं जो विभिन्न व्यक्तियों, यथा मूसा, दाऊद, सुलैमान, दानियाल, तथा एक से अधिक पैगम्बरों (apostles) की रचना कहे जाते हैं; और जो संभवत: इन व्यक्तियों की रचना नहीं हो सकते, अपितु पश्चात् के समयों की उपज हैं]।

(३) बाईबल की अवयवभूत पोथियां जिन महामनुष्यों की कृति करके प्रसिद्ध हैं, अपने अन्त:साक्ष्य से वे उनकी रचना सिद्ध नहीं होतीं। देखिये अपने ग्रन्थ के पृष्ठ ६२ पर पादरी सण्डरलैण्ड लिखते हैं :—"Scattered all through the pentateuch are passages which betray

other and later authors than Moses. If we turn to Deuteronomy XXXIV, 5-6, we find an account given of Moses' death and burial that can hardly have been written by Moses; men do not write histories of their own death and funeral obsequies. It has been claimed that Moses was miraculously inspired to write it beforehand. But this claim is cut off by the sentence with which the account ends, which is: 'No man knoweth of his sepulchre unto this day." [मूसा की पंचग्रन्थी (तौरेत) में ऐसे अनेक प्रसंग यत्र तत्र बिखरे हुए मिलते हैं जो मूसा से भिन्न और पश्चाद्भावी लेखकों की सूचना देते हैं। यदि हम 'व्यवस्था विवरण' पुस्तक के ३४।५-६ को देखें तो वहां हमें मूसा की मृत्यु× तथा उसके गाड़े जाने का वृत्तान्त मिलता है। इसे मूसा नहीं लिख सकता; मनुष्य अपनी मृत्यु एवं अन्त्येष्टि सम्बन्धी इतिवृत्त नहीं लिखा करते। यह दावा किया गया है कि मूसा को यह सब कुछ पूर्व लिखने के लिये चमत्कार रूप से दैवी प्रेरणा मिली। किन्तु इस दावे को अन्तिम वाक्य, जिसके साथ यह वृत्त समाप्त होता है, काट देता है, जो इस प्रकार है :—'और आज के दिन कोई नहीं जानता कि उसकी कबर कहां है']।

इसी ग्रन्थ के पृष्ठ ६३ पर लिखा मिलता है :—"In Numbers XII, 3, we find the statement: 'Now the man Moses was very meek, above all the men who were upon the face of the earth.' Does this look like a passage written by Moses? Do meek men write in this way about them-

---

×वे वाक्य ये हैं:—'तब यहोवा के कहने के अनुसार उसका दास मूसा, वहीं मोआब के देश में मर गया। और उसने उसे मोआब के देश में बेतपोर के सामने एक तराई में मिट्टी दी। और आज के दिन तक कोई नहीं जानता कि उसकी कब्र कहां पर है'।

selves ?" ['गिनती' नामक पुस्तक के १२।३ में हम यह कथन पाते हैं :— 'मूसा तो पृथिवी भर के सब मनुष्यों से बहुत अधिक नम्र स्वभाव का था'। क्या यह प्रसंग मूसा का लिखा प्रतीत होता है ? क्या नम्र मनुष्य अपने विषय में इस प्रकार लिखते हैं'] ।

आगे इसी पृष्ठ पर पुनः लिखा है :—"In Genesis XXXVI, 31, appears this record : 'And these are the kings that reigned in the land of Edom, *before* there reigned any king over the children of Israel.' When was this written ? Of course after there were Israelitish kings, and by some one who knew of these kings. Certainly it could not have been written in Moses' days before such kings existed or were dreamed of." [उत्पत्ति ३६।३१ में यह वृत्तान्त मिलता है कि "फिर जब इस्राएलियों पर किसी राजा ने राज्य नहीं किया था तब 'एदोम' के देश में ये राजा हुए" । यह कब लिखा गया ? निस्सन्देह उस समय के पश्चात् कि जब इस्राएली राजा हुए, और यह उसने लिखा जो इन राजाओं के विषय में जानता था । निश्चयपूर्वक यह मूसा के समय में भी नहीं लिखा गया, जबकि न ये राजा थे और न इनका स्वप्न भी आ सकता था]।

एक और उदाहरण लीजिये :—"In Deuteronomy XXXIV 10, we read : 'And there arose not a prophet since in Israel like unto Moses'. It need hardly be asked whether this can be regarded as of Mosaic Authorship." [व्यवस्था विवरण ३४।१० में हम पढ़ते हैं :—"और मूसा के तुल्य इस्राइल में ऐसा कोई नबी नहीं उठा" । इसके पूछने की आवश्यकता नहीं है कि क्या यह मूसा की रचना माना भी जा सकता है]।

पादरी सण्डरलैण्ड के मत से तौरेत में निम्नलिखित गड़बड़झाला है:—

(क) उसी घटना को दोबारा, तिबारा लिखना; परन्तु उसका कोई स्पष्ट हेतु न देना । ऐसा अनेक वार हुआ है ।

(ख) परस्पर विरोध तथा अनेक प्रकार का ऐतिहासिक भेद ।

(ग) कथानक में सहसा परिवर्त्तन तथा विच्छेद।

(घ) शैली का सहसा परिवर्त्तन, मानो अनेक मनुष्य बोल रहे हों, किन्तु एक के जाने तथा दूसरे के आने का कोई संकेत नहीं।

(ङ) प्रयोजन के विना इब्रानी में परमेश्वर के विभिन्न नामों का प्रयोग+।

(च) नियमव्यवस्था सचमुच प्रारंभिक एवं असभ्य युग के लिये है। कहीं कहीं उसमें अधिक उन्नत सभ्य युग की व्यवस्था का मिश्रण है।

(छ) धार्मिक एवं आचारिक शिक्षाय कदाचित् ही जंगलीपन के स्तर से ऊपर हैं, और परमात्मा के सम्बन्ध में विचार तो स्पष्ट अनेकेश्वरवाद* तथा टूनाटामन, जैसे भी हैं, साथ ही उच्चतम तथा पवित्रतम आचारिक एवं धार्मिक शिक्षायें तथा परमात्मा सम्बन्धी विचार भी विद्यमान हैं।

(ज) नई तथा पुरानी इब्रानी भाषाओं का विचित्र संमिश्रण किया गया है। ईसा से चौदहवीं पन्द्रहवीं शती पूर्व के वृत्तान्तों में ईसा पूर्व पांचवां शती की भाषा का प्रयोग।

पादरी महोदय ने युक्तियों और प्रमाणों से सिद्ध किया है कि बाईबल की विभिन्न पुस्तकों का समावेश रचनाक्रम से भी नहीं किया गया। इसका वर्णन करते हुए वह लिखते हैं :—" At the end, now we find that strange book whose place in the Bible has always been regarded as so questionable; namely, the Revelation or the Apocalypse." (पृष्ठ ५३)। [अब अन्त में हमें वह विचित्र पुस्तक मिलता है, बाईवल में जिसे स्थान देना सदा से ही इतना विवादास्पद रहा है, अर्थात् 'प्रकाशित वाक्य']।

सोचिये, जिस ग्रन्थ का कोई अंश ऐसा हो जिसके उसका भाग होने में सन्देह वा विवाद हो तो क्या समस्त ग्रन्थ संशयास्पद नहीं हो जाता ?

+तौरेत में अनेक बार परमात्मा का नाम एलोहीम (Elohim) आता है। यह बहुवचनान्त है।

*बाईबल में अनेकेश्वरवाद देखकर ही पाश्चात्यों ने वेदों में उसका आरोप किया।

(४) आज कल के ईसाई कहने लगे हैं कि हमारे लिये 'New Testament' (नया सुसमाचार इंजील) परम प्रमाण है। उसके संबन्ध में इतना ही कहना पर्याप्त है कि वह परमात्मा की तो दूर, ईसा जी की भी रचना नहीं है। पादरी सण्डरलैण्ड इस विषय में अपनी पुस्तक में लिखते हैं :— "Jesus himself wrote nothing. Nor is it strange that so long as he was living, no one else should have thought to write an account of his words and deeds. When his followers after his death began to go about telling his story, and preaching his gospel, every thing was fresh in their memory; hence, what need was there yet for written records? Moreover they expected him soon to return. and when they had *him*, what would they care for writing about him." (पृष्ठ ११४) [ईसा ने स्वयं कुछ नहीं लिखा। और यह भी कोई आश्चर्य की बात नहीं कि जब तक वह (ईसा) जीवित रहा, किसी को उसके शब्दों और कार्यों को लिखने का विचार ही न आया हो। उसके देहान्त के पश्चात् जब उसके शिष्य उसकी कहानी सुनाने तथा उसका उपदेश (इंजील) सुनाने को बाहर जाने लगे, उनके मस्तिष्क में सब कुछ ताजा था, अतः अभी लिखित लेखा की क्या आवश्यकता थी? इसके अतिरिक्त उन्हें उसके (ईसा के) शीघ्र लौट आने की आशा थी, तब जब वह उन्हें फिर प्राप्त होगा तो उसके विषय में लिखने की किसी को क्या चिन्ता होगी]।

और देखिये। इसी पृष्ठ पर इसी के आगे इंजील की रचना के संबन्ध में वह लिखते हैं :—"But time passed on, and Jesus did not return; moreover, the recollections, at first so distinct and vivid, tended to grow dim as the years multiplied; and, most serious of all, one and another who had known him best began to be taken away by death. Then arose a feeling of need for written memorials.

"But who should write them ? Jesus had commissioned no one to do it. Who should assume the responsibility ? And if they wrote, in what form should it be ? Meanwhile, oral traditions, more or less definite, were springing up, based upon the preachings of the different apostles, and side by side with these, as was inevitable, misunderstandings, exaggerations, legends, seeking for incorporation with the traditions.

"Such was the general condition of things out of which, probably thirty years or more after the death of Jesus, there began in tentative fashion the work of writing out memorials of his great life and teachings."

"किन्तु समय बीतता गया और ईसा न लौटा। अपरंच, ज्यों समय बीतता गया, व स्मृतियां जो पहले स्पष्ट एवं व्यक्त थीं, धुन्धली होने लगीं, और सबसे अधिक शोचनीय बात यह कि जो ईसा को भली भांति जानते थे वे क्रमशः काल से कवलित होने लगे, तब लिखित संस्मरणों की आवश्यकता का विचार उत्पन्न हुआ।

"परन्तु उन्हें लिखे कौन ? ईसा ने तो इस कार्य के लिये किसी को नियुक्त न किया था। कौन इस उत्तरदायित्व को ले ? इसी बीच विभिन्न सन्देशहरों के प्रचार के आधार पर, न्यूनाधिक निश्चित उपाख्यानों की सृष्टि होने लग गई थी। भ्रान्तियां, अत्युक्तियां, कथायें भी उपाख्यानों में सम्मिलित होना चाह रही थीं।

"यह सामान्य परिस्थिति थी जिसके आधार पर, ईसा की मृत्यु के तीस अथवा अधिक वर्षों के पश्चात् उसके महान् जीवन तथा उपदेशों के संस्मरणों को अटकलपच्चू ढग से लिखने का उपक्रम किया गया।"

इसके पश्चात् पादरी सण्डरलैण्ड ने यह चेतावनी दी है :—"We

must not suppose, however that those first memorials were our present Gospels. Biblical scholarship has shown what an attentive reading ought to make clear, that the works we call Matthew, Mark, Luke presuppose and rest upon earlier gospel-writings." (पृष्ठ ११४) [किन्तु हमें यह कल्पना नहीं करनी चाहिये कि वे प्रथम संस्मरण हमारी वर्तमान इंजीलें हैं। बाईबल के विद्वानों ने दिखला दिया है, और जो इंजीलों के सावधानतापूर्वक अध्ययन से भी स्पष्ट हो जाना चाहिये कि वे ग्रन्थ, जिन्हें हम 'मत्ती' 'मरकस' एवं 'लूका' कहते हैं, अपने से पूर्ववर्त्ती इंजीलों की सत्ता का परिचय देते हैं और उन पर आधारित हैं]।

इसके सम्बन्ध में आगे चलकर पृष्ठ ११५ पर इस प्रकार लिखा मिलता है :—"There were doubtless other early writings about Jesus, and his mission, of which no trace remains. Indeed, the prefatory remarks in the Gospel according to Luke say in so many words that already 'many have taken a hand to draw up a narrative concerning those matters." [निस्सन्देह ईसा और उसके मिशन के सम्बन्ध में दूसरे प्राचीन लेख थे जिनका अब कोई चिन्ह नहीं है। सचमुच लूका की अनुसारिणी× इंजील का भूमिकात्मक लेख इतने शब्दों में इस बात को कहता है कि इस समय भी 'बहुतों ने इन विषयों पर लिखना आरंभ+किया है']।

× इसको आगे स्पष्ट किया जायेगा।

+पूरा सन्दर्भ इस प्रकार है—"इसलिये कि बहुतों ने उन बातों का जो हमारे बीच बीती हैं इतिहास लिखने में हाथ लगाया है। जैसा कि उन्होंने जो पहले ही से इन बातों के देखने वाले और वचन के सेवक थे हम तक पहुंचाया। इसलिये हे श्रीमान् थियुफिलुस मुझे भी यह उचित मालूम हुआ कि उन सब बातों का हाल आरम्भ से ठीक-ठीक जांच करके उन्हें तेरे लिये क्रमानुसार लिखूं कि तू यह जानले कि वे बातें जिनकी तूने शिक्षा दी है कैसी अटल हैं" १-४

कदाचित् किसी को भ्रम हो जाये कि यह मत्ती आदि की इंजीलें, ईसा रचित न सही, मत्ती आदि की रचना तो हैं, इसके सम्बन्ध में पादरी सण्डरलैण्ड वहुत अद्भुत बात कहते हैं जो मस्तिष्क के कपाट खोल देती है। वह यह है :—"Further, it is a sérious error to speak of the 'Gospel of Mathew' or other evangelists; the only correct term is '*Gospel according to*' in original. This is not, of course, a phrase used to denote authorship." [अपरंच, 'मत्ती अथवा किसी अन्य की इंजील' ऐसा कहना एक गंभीर भूल है। '...के अनुसार इंजील' ऐसा कहना ही एक मात्र शुद्ध परिभाषा है। निस्सन्देह वह कर्त्तापन को प्रकट करने के लिये नहीं है]।

यह महत्वपूर्ण बात है। बाईवल के अंग्रेजी अनुवादों में भी 'The Gospel according to St. Luke' आदि लिखा रहता है, किन्तु हिन्दी अनुवाद में 'मत्तीरचित सुसमाचार' लिखा हुआ है। सचमुच यह अशुद्ध एवं भ्रम में डालने वाला भाषान्तर है। जब वास्तव बात यह निकली कि यह इंजील समुदाय मत्ती आदि के अनुसार है तो स्पष्ट है कि यह मत्ती आदि सन्तों की भी रचना नहीं है, इनके रचयिता कोई और हैं। अर्थात् इनका रचयिता परमेश्वर तो कहां, ईसा व उसके साक्षात् शिष्य भी इनके रचने वाले नहीं हैं, तब ये ईश्वरवाक्य कैसे ?

आगे चलकर पृष्ठ ११८ पर लूका की इंजील के सम्बन्ध में वह लिखते हैं:—"That the real writer or editor was actual Doctor Luke is, however most improbable, this Gospel, too, is anonymous and much remain so." [कि वास्तविक लेखक या सम्पादक डाक्टर 'लूका' था, यह अत्यन्त असंभव है। यह इंजील भी अज्ञातनामा लेखक की कृति हैं और ऐसी ही रहेगी]।

'योहन्ना (John) की अनुसारिणी इंजील' के सम्बन्ध में पृष्ठ १२३-१२४ में वह लिखते हैं :—"So very marked and significant are contrasts between the first three Gospels and the Fourth that if the former are to be taken as giving in

the main a true picture, the latter can neither be historical nor the production of an eyewitness." [पहली तीन इंजीलों और चौथी में इतना स्पष्ट और प्रबल पारस्परिक विरोध है कि यदि यह माना जाये कि पहली तीन इंजीलों में प्रधानतया, सच्चा चित्र है, तो चौथी के सम्बन्ध में यह कहना होगा कि न तो वह ऐतिहासिक है और न ही किसी अक्षिभू साक्षी की रचना है]।

पहली तीन और योहन्ना की इंजीलों का विरोध दिखाकर वह लिखते हैं:—"This complete difference between the Fourth Gospel and the others, is the chief reason why scholars have increasingly found it impossible to believe that it could have been written by one of Jesus' own disciples." (पृष्ठ १२८-१२९) [चौथी तथा दूसरी (तीन) इंजीलों के इस सर्वथा विभेद के कारण विद्वानों के लिये इस बात का मानना अत्यन्त असंभव हो गया है कि यह चौथी इंजील ईसा के किसी साक्षात् शिष्य की भी रचना हो सकती है]।

'नया सुसमाचार' (New Testament) के सम्बन्ध में पादरी सण्डरलैण्ड का निम्नलिखित कथन बहुत ध्यान देने योग्य है:—"The verdict of the competent scholarship is unequivocal and unanimous that these Gospel records are human and, as human, contain human imperfections. They display no omniscience on the part of their writers or their compilers; how, then, can they be free from errors."(पृष्ठ १३२-१३३) [समर्थ विद्वानों का यह असंदिग्ध तथा सर्वसम्मत निर्णय है कि इंजील-रचनायें मानुषी हैं और मानुषी होने के कारण, इनमें मानुषी त्रुटियां भी हैं। वे अपने लेखकों वा संग्रहकर्ताओं की सर्वज्ञता की कोई चर्चा नहीं करतीं, फिर वे कैसे भूलों से रहित हैं]।

इससे आगे डा० सण्डरलैण्ड ने 'नूतन सुसमाचार' की शेष पोथियों की भी आलोचना की है और उनकी भी लगभग ऐसी ही स्थिति दर्शायी है।

(५) प्रोटेस्टेण्टों तथा कैथोलिकों की बाईबलों के विभेद (अनेकता) के संबन्ध में हम अन्यत्र + संक्षेपेण लिख चुके हैं। यहां हम यह दिखाना चाहते हैं कि कुछ ऐसे ग्रन्थ थे जिनकी बाईबल में चर्चा है, किन्तु वे प्रायः विलुप्त हैं। पृष्ठ १६८ पर पादरी सैण्डरलैण्ड लिखते हैं:—"We find, on examination, that no fewer than sixteen books are wanting from the Old Testament which are referred to in various places in the Bible as if they were equally authoritative with books which are included in the Canon. So far as we know, all of these sixteen books, with one exception, are lost." [परीक्षा करने पर हमें ज्ञात होता है कि कम से कम सोलह पोथियां पुरातन 'सुसमाचार' से लुप्त हो चुकी हैं जिनका बाईबल के विविध स्थानों पर इस प्रकार उल्लेख है, मानों वे संहिता में सम्मिलित पुस्तकों के समान ही प्रामाणिक थीं]।

इसके आगे उन सोलह पोथियों के नाम, तथा बाईबल में उनके उल्लेख स्थानों का उल्लेख करके श्री सैण्डरलैण्ड महोदय पृष्ठ १२९ पर पूछते हैं:—"Why were these books allowed to perish? Why were they not included in the Old Testament? If scripture writers themselves referred to them of the same sort as their own writings, how can a line be drawn between them and genuine scripture? Indeed what is it that constitutes genuine scripture?" [क्यों इन पोथियों को नष्ट होने दिया गया? क्यों वे पुरातन सुसमाचार में सम्मिलित न की गईं? यदि धर्मग्रन्थों (Scriptures) के लेखक स्वयं इनके सम्बन्ध में अपने समान जैसा संकेत करते हैं तो उनके और वास्तविक धर्मग्रन्थ के बीच में कैसे कोई विभाजक रेखा खींची जा सकती है? किन्तु सच मुच वह क्या वस्तु है जिससे वास्तविक धर्मग्रन्थ बनता है?]।

इसके अतिरिक्त पन्दरह पुस्तकों की एक और सूची इसी ग्रन्थ के पृष्ठ १७० पर दी गई है। इसके आगे पृष्ठ १७१ पर चौदह पोथियों की एक और सूची दी

+ देखिये पृष्ठ ४५३ सटिप्पण सत्यार्थ प्रकाश।

गई है। इस सूची का परिचय इन शब्दों में वहां दिया हुआ हैं :—"Better known and, on the whole, of higher value is a third list of fourteen books, known as the Old Testament Apocrypha. They are all extant and are more or less familiar to the public, being accessible in English translation in several editions. The English 'Revised version' includes them as well as the Old and New Testaments though they are not strictly 'Bible' for Protestants. They are books which the Jews of the Palestine (always more conservative than their brethren in the outside world) did not use as scripture, but which were included in the Canon of the Septuagint, the Greek translation made for the Jews of the Dispersion. Since the Septuagint became the Old Testament of the Greek speaking Christian Church, these books belonged to its Bible. When its language became Latine, they were made part of the official Vulgate, so are part of all Roman Catholic Bibles to this day. The Protestant reformers however, followed the Hebrew Canon as used in Palestine, and omitted them, though now and then a protestant Bible (generlly a large one for family or pulpit use) falls in to our hands which contains them." (पृष्ठ १७०-१७१) [अधिक प्रसिद्ध और अधिक महत्व की, चौदह पोथियों की एक तीसरी सूची है जो पुरातन सुसमाचार का 'अपोक्रिफा' (खिल) के नाम से ज्ञात है। ये सब प्रचलित हैं और जनता को इनका थोड़ा बहुत परिचय भी है, क्योंकि अनेक संस्करणों में इसके अंग्रेजी अनुवाद मिलते हैं। अंग्रेजी बाईबल के 'Revised Version' में ये उसी प्रकार सम्मिलित हैं, जिस प्रकार कि पुरातन तथा नूतन सुसमाचार

सम्मिलित हैं, यद्यपि प्रोटेस्टेण्टों के लिये वे वस्तुतः 'बाईबल' नहीं हैं। वे वे पोथियां हैं जिन्हें फिलिस्तीन के यहूदी (संसार के दूसरे भागों में रहने वाले अपने भाईयों की अपेक्षा अधिक कट्टर) धर्मग्रन्थ के रूप में प्रयोग नहीं करते थे। किन्तु जो 'सेप्तुआजिन्त' की संहिता में जो उजड़े हुये यहूदियों के लिये यूनानी भाषा में अनूदित की गई थीं, सम्मिलित थी। अतः यह 'सेप्तुआजिन्त' यूनानी-भाषा-भाषी चर्च का पुरातन सुसमाचार बन गया। ये पोथियां भी इस चर्च की बाईबल का [भाग] हो गईं। जब इसकी भाषा लातीनी हो गई, तो वे अधिकृत वुलगेट+का भाग बन गईं और अत एव आज तक वे सभी रोमन कैथोलिक बाईबलों का भाग हैं। किन्तु प्रोटेस्टेण्ट सुधारकों ने फिलिस्तीन में प्रयुक्त होने वाली इब्रानी संहिता का अनुसरण किया और इनका त्याग कर दिया। तो भी अब तक कोई ऐसी बाईबल (प्रायः करके घर तथा प्रचारवेदी के प्रयोग के लिये बड़ी सी) हमारे हाथों में आ जाती है, जिसमें वे पोथियां होती हैं]।

सूची के पश्चात् दिये गये पादरी सैण्डरलैण्ड के उद्गार भी मनन करने योग्य हैं। वह लिखते हैं:—"Whether or not we wish to call these fourteen books 'Bible' we cannot fail to realize that not only as literature, but in respect to their moral and religious teachings some of them are equal or superior to writings now in the Canon. For example no unprejudiced mind can hesitate for a moment to place the apocryphal Wisdom of Solomon or Ecclesiasticus above the Canonical Esther or Ecclesiasts. The use and appreciation of the Apocrypha among the protestant Churches is fortunately increasing." (पृष्ठ १७१-१७२) [चाहे हम इन चौदह पुस्तकों को बाईबल कहें अथवा न कहें, किन्तु हम यह अनुभव किये बिना नहीं रह सकते कि इनमें से कुछ, न केवल साहित्य की दृष्टि से, अपितु उनकी आचारिक एवं धार्मिक शिक्षाओं की

+बाईबल के लातीनी अनुवाद को वुलगेट (Vulgate) कहते हैं।

दृष्टि से, वर्तमान संहिता के लेखों के समान अथवा उत्कृष्टतर हैं। उदाहरणार्थ, कोई निष्पक्ष सचेता संहितान्तर्गत 'एस्तेर' अथवा 'सभोपदेशक' की अपेक्षा इस 'अपोक्रिफा' (खिल) के 'सुलैमान का ज्ञान' (Wisdom of Solomon) अथवा 'सिरा पुत्र ईसा का ज्ञान' (Eeclesiasticus) को उच्च मानने में संकोच नहीं करेगा। सौभाग्य से प्रोटेस्टेण्ट चर्चों में 'अपोक्रिफा' (खिल) का प्रयोग तथा मान बढ़ रहा है]।

जिस पुस्तक के परिमाण आकार इयत्ता ही संदिग्ध हैं, हमें उसको ईश्वरप्रदत्त पुस्तक मानने की प्रेरणा की जाती है।

अब तनिक 'नूतन सुसमाचार' (New Testament) के खिलों का वृत्तान्त भी जान लीजिये और वह भी पादरी सैण्डरलैण्ड के शब्दों में ही। वह लिखते हैं :—"Are the books that appear in our New Testament Canon, all that were written in connection with the origion of the Christian movement? Or, if others were written, how many by what titles? Are such works extant? Was there any clear line by which the two classes were distinguished?

"As a matter of fact, the number of early Christian writings, in addition to the twenty-seven in our Canon, is very large. A complete list of those which are extant, those of which we have fragments, and those known to us by name or reference, would probably contain two hundred items. No such complete list has been made or can easily be made, as new manuscripts are frequently being discovered, and many of the sources are obscure." (पृष्ठ १७२)।

"हमारे नूतन सुसमाचार में जो पोथियां उपलब्ध होती हैं, ईसा के सम्बन्ध में जो कुछ लिखा गया क्या वह सब इतना ही है? अथवा, यदि अन्य पोथियाँ लिखी गईं तो कितनी और किन नामों वाली, और किन लेखकों के

द्वारा ? क्या ऐसी पोथियां विद्यमान हैं ? क्या कोई ऐसा चिह्न था जिससे दोनों श्रेणियों का पृथक्करण किया जा सके ?"

"वस्तुतः, प्रारम्भिक ईसाई लेखों की संख्या, हमारी संहिता की सत्ताईस पोथियों के अतिरिक्त, बहुत बड़ी है। जो आज उपलब्ध हैं, जिनके कुछ भाग उपलब्ध हैं अथवा जिनका नामों या उद्धरणों से ज्ञान है, उन सबकी पूरी सूची सम्भवतः लगभग दो सौ नामों की होगी। ऐसी कोई सूची न बनी है और न सरलता से बन सकती है। क्योंकि नये हस्तलेख खोजे जा रहे हैं, और अनेक साधन अज्ञात है"।

तात्पर्य यह है कि बहिष्कृत अथवा त्यक्त पोथियों की संख्या स्थानप्राप्त पोथियों से लगभग आठ गुनी है।

पादरी सैण्डरलैंण्ड चालीस पुस्तकों की सूची देकर उनके सम्बन्ध में लिखते लिखते यह कहते हैं:—"But we now recgonize that no line can be drawn between the 'canonical' and 'apocryphal' books.........We cannot say that the former are 'inspired' while the latter are not, or even that those in the Canon are always of a quality superior to those outside it." (पृष्ठ १७५) [अब हम यह जानने लगे हैं कि 'सांहितिक' पोथियों तथा 'खैलिक' पोथियों में कोई विभेदक रेखा नहीं खींची जा सकती।......हम यह भी नहीं कह सकते कि 'सांहितिक' पोथियां इल्हामी हैं और 'खैलिक' इल्हामी नहीं। और (न ही यह कह सकते हैं) कि संहिता में संमिलित पोथियां गुणों की अपेक्षा से संहिता से बाहर वाली पोथियों से सर्वथा उत्कृष्ट हैं]।

खिलों का महत्व

इस विषय में पादरी सैण्डरलैण्ड लिखते हैं :—"Without the Old Testament Apocryphal books, there would be a wide historic gap or blank between the Old and New Testaments which we could not bridge or fill," (पृष्ठ १७७)। [पुरातन सुसमाचार की खिल-पोथियों के बिना पुरातन और नूतन

सुसमाचारों के बीच एक विस्तृत खाई वा अभाव हो जायेगा जिसे न हम भर सकें और न पूरा कर सकें]।

इतना ही नहीं, पादरी सैण्डरलैण्ड अपने ग्रन्थ के पृष्ठ १८१ पर पुनः लिखते हैं :—"Nor can we wonder that these apocryphal writings were widely read by the early Christian Church, and quoted by the early Christian theologions as if they were of equal authority with the Old Testament; that they continued to be virtually a part of the Christian bibilical canon down to modern times; that in the Roman Catholic scripture canon they still have a place; that Luther's Bible cantained a majority of them; that the leading translations and revisions of our Protestant English Bible from Coverdale's down to the scholars who gave us our 'Revised Version' revised these Apocryphal writings with the rest, although they published them in a separate volume." (पृ० १८१) [हमें आश्चर्य नहीं हो सकता कि ये खिल-लेख प्रारम्भिक ईसाई चर्च में प्रचुरमात्रा में पढ़े जाते थे, और कि प्रारम्भिक ईसाई धर्म्मशास्त्री इनका प्रमाण देते थे मानो यह पुरातन सुसमाचार के समान प्रामाणिक हैं; और कि वे इस वर्तमान समय तक ईसाईयों की बाईवल संहिता का वस्तुतः भाग रहे हैं, और कि रोमन कैथोलिक धर्म्मग्रन्थ संहिता का तो वे अब भी भाग हैं; और कि लूथर की बाईवल में इनकी अधिक संख्या सम्मिलित थी; और 'कवरडेल' से लेकर 'प्रामाणिक संस्करण' तक, हमारी प्रोटेस्टेण्ट अंग्रेजी बाईवल के प्रमुख अनुवादों एवं संशोधनों, शोधे हुए अनुवादों में—सब में ये विद्यमान रहे; और जिन विद्वानों ने हमें हमारा संशोधित संस्करण दिया है, उन्होंने इन खिल पाठों का भी शेष के साथ संशोधन किया है, यद्यपि उन्होंने इन्हें पृथक् भाग में प्रकाशित किया है]।

तात्पर्य्य यह है कि बाईबल व्यवस्थित नहीं है। अव्यवस्थित पुस्तक देववाक्य ! अब्रह्मण्यम् !!!

(६) बाईबल का मूल पाठ भी अशुद्ध है। 'दानियाल' और 'एज्रा' के अतिरिक्त पुरातन सुसमाचार इब्रानी भाषा में लिखा गया। उसके मूल में दस हजार तक भूलों का होना बताकर अन्त में पादरी सैण्डरलैण्ड लिखते हैं :—"One thing at least these variations do—they show beyond a possibility of doubt or question that we have, and in the nature of the case can have, no perfect or infallible Old Testament Hebrew text." (पृष्ठ २१०) [ये भेद (पाठभेद) एक काम करते हैं—कि वे किसी प्रकार शंका या सन्देह की सम्भावना के विना यह दर्शाते हैं कि न हमारे पास पूर्ण या निर्दोष पुरातन सुसमाचार की पोथी है, और न हो ही सकती है]।

जो पुस्तक निर्दोष नहीं है, उससे धर्म्म के निर्दोष ज्ञान की सम्भावना कैसी ? और वह देववाक्य कथम् ?

नूतन सुसमाचार में पाठभेदों की संख्या डेढ़ लाख है, जैसा कि पृष्ठ २१५ पर पादरी सैण्डरलैण्ड ने लिखा है :—"How many such different readings have been discovered ? The answer is startling. It is quite within bounds to say one hundred and fifty thousand. Some authorities put it higher than that; but that is the number announced to the world by the 'American Bible Rivision Committee.'" [ऐसे कितने पाठभेदों का पता लगा है ? उत्तर चौंका देने वाला है। लगभग डेढ़ लाख की सीमा में यह संख्या जाती है। कई विशेषज्ञ तो इससे भी अधिक बताते हैं। किन्तु यह वह संख्या (डेढ़ लाख) है, जिसे 'अमरीकन बाईबल संशोधन समिति' ने संसार के आगे घोषित किया है]।

डेढ़ लाख पाठभेद तो केवल नूतन सुसमाचार में हैं ! किस पाठ को कैसे प्रामाणिक और किस आधार पर देववाक्य माना जाय ?

इसी पृष्ठ पर आगे लिखा है :—"It must not be supposed, however, that we now have a Greek text that is perfect. No one knows so well as New Testament scholars themselves how very far from perfection it is. There still remain thousands of uncertainties, thousands of conflicting readings. Nor is there any ground for hope that it can ever be otherwise." [तथापि यह कल्पना सर्वथा नहीं करनी चाहिये कि अब हमारे पास ऐसा यूनानी + पाठ है जो निर्दोष है। नूतन सुसमाचार के विद्वानों से बढ़कर कोई नहीं जानता कि यह निर्दोषता से कितनी दूर है। इसमें अभी सहस्रों सन्दिग्ध पाठ, सहस्रों परस्पर विरुद्ध पाठ हैं, और न ही ऐसी आशा करने का कोई हेतु है कि इसके विपरीत कभी होगा]।

परस्पर विरोधी पाठों में से कौन सा देवकृत है ? इसका निर्णय कोन करेगा ? अर्थात् बाईबल के दोनों विभागों में पाठों सम्बन्धी घोर अव्यवस्था है।

ऊपर दिखाया जा चुका है कि वर्तमान बाईबल में घटती-बढ़ती होती रही है। अर्थात् इसमें मिलावट हटावट होती रही है। इस विषय में पादरी सैण्डरलैंण्ड का लेख देखने योग्य है। वह लिखते हैं :—"Occasionally, too, interpolations were made for doctrinal purposes." (पृष्ठ २१४) [समय-समय पर सिद्धान्तों के लिये प्रक्षेप होते रहे]।

त्रित्व (पिता-पुत्र-पवित्रात्मा) सिद्धान्त की पुष्टि के लिये १ योहन्ना ५ के एक प्रकरण को इसी प्रकार प्रक्षेप मान कर उन्होंने लिखा है :— "......but which the 'Revised Version' throws out, as scholars have long known, it ought to have been thrown out." (पृष्ठ २१४) [किन्तु जिसे संशोधित संस्करण ने बाहर

+ नूतन सुसमाचार यूनानी भाषा में लिखा गया है।

निकाल फेंका है, जैसा कि विद्वानों को ज्ञात था उसे बहुत पहले बाहर निकाल दिया जाना चाहिये था] ।

अनुवादों में भी बहुत भेद तथा विरोध है। इंग्लैंड में जो स्वीकृत अनुवाद है उसे 'Authorised Version' (प्रामाणिक संस्करण) कहते हैं। अमरीका में प्रचलित बाईबल के संस्करण को 'Revised Verision' (संशोधित संस्करण) कहते हैं। इन दोनों के नूतन सुसमाचार (New Testament) में छत्तीस हजार भेद हैं, पादरी सैण्डरलैण्ड के इस विषय में ये शब्द हैं :—"The 'Revised Version' of the New Testament differs from the New Testament in the 'Authorised Version' in more than 36,000 places." [नूतन सुसमाचार का 'संशोधित संस्करण' नूतन सुसमाचार के 'प्रामाणिक संस्करण' से ३६००० से अधिक स्थानों में विभिन्न है] ।

पादरी सैण्डरलैण्ड अमरीकन हैं। यहां वह संशोधित संस्करण का उत्कर्ष इस प्रकार बतलाते हैं :—(१) इसमें से वे सब सन्दर्भ निकाल दिये गये हैं जिन्हें आज जाली या कृत्रिम माना जाता है। इनकी संख्या पर्याप्त है। वे प्रक्षिप्त हैं, क्योंकि वे हमारे प्राचीनतम और सर्वोत्तम हस्तलेखों में नहीं हैं। कई विषयों में उनका रखना अथवा निकाल देना सिद्धान्त को भी प्रभावित करता है। (२) इसमें सन्दर्भों का विभाजन अपेक्षया बहुत उत्तम हुआ है। (३) इसमें अध्यायों के भ्रामक नाम भी नहीं हैं। (४) नूतन सुसमाचार में पुरातन सुसमाचार के उद्धरणों को उद्धरणों के रूप में दिखाया गया है।

और भी कई उत्कर्ष उन्होंने दिखाये हैं, किन्तु वे हमारे किसी प्रयोजन के नहीं हैं। हिन्दी में जो अनुवाद आजकल हुआ, वह उससे अतीव भिन्न है जो आज से लगभग अस्सी वर्ष पूर्व था, जिसको आधार मानकर स्वामी दयानन्द ने बाईबल की समीक्षा लिखी। वर्तमान हिन्दी अनुवाद को देखकर हमें अनुभव होता है कि इस पर स्वामीजी की छाप अत्यन्त स्पष्ट है।

यहां हम इसका एकाध उद्धरण प्रस्तुत करते हैं। उनको प्रस्तुत करने से पूर्व हम उस अनुवाद के विषय में कुछ कहना आवश्यक समझते हैं। अनुवाद में परिवर्तन कई दृष्टियों से हुआ है। अनुवाद की भाषा सुधारने के लिये परिवर्तन किया गया है। निस्सन्देह भाषा में अवश्य सुधार हुआ है, किन्तु भाषा में सौन्दर्य एवं सौष्ठव नहीं आ सका। परिवर्तन का दूसरा हेतु आक्षेप-निराकरण है। किन्तु यह बहुत कठिन कार्य है। परम्परा से जो अनुवाद चला आ रहा है उसमें परिवर्तन करने को बहुत बड़ा आधार चाहिये। हम पाठकों को इस दूसरे प्रकार के अनुवाद का एकाध नमूना दिखाना चाहते हैं। पाठक स्वयं आयतों का नया तथा पुराना अनुवाद मिलान करके देखें।

(१) उत्पत्ति० पर्व १ आयत ६, ७, ८

पुराना अनु०	नया अनु०
'और ईश्वर ने कहा कि पानियों के मध्य में आकाश होवे और पानियों को पानियों से विभाग करे तब ईश्वर ने आकाश को बनाया और आकाश के नीचे के पानियों को आकाश के ऊपर पानियों से विभाग किया और ऐसा हो गया और ईश्वर ने आकाश को स्वर्ग कहा और सांझ और बिहान दूसरा दिन हुआ'।	'तब परमेश्वर ने कहा कि जल के बीच एक ऐसा अन्तर हो कि जल दो भाग हो जायें। तब परमेश्वर ने एक अन्तर करके उसके नीचे के जल और ऊपर के जल को अलग अलग किया, और वैसा ही हो गया और परमेश्वर ने उस अन्तर को आकाश कहा तथा सांझ हुई फिर भोर हुआ इस प्रकार दूसरा दिन हो गया'।

इन दोनों अनुवादों को तनिक विचार से देखिये। कितना अन्तर है। पुराने अनुवाद के 'ईश्वर ने आकाश को स्वर्ग कहा' वाक्य ने नये में यह रूप धारण किया है :—'परमेश्वर ने उस अन्तर को आकाश कहा'। 'आकाश' ने 'स्वर्ग' को भगा दिया और 'अन्तर' ने 'आकाश' का स्थान ले लिया। इस परिवर्तन का मूल एक ऋषिकृत समीक्षा× ही है।

× समीक्षा सं० ३ पृष्ठ ४५५-५६ सटिप्पण सत्यार्थप्रकाश।

(२) उत्पत्ति० पर्व १, आयत २६, २७

पुराना अनु०

'जब परमेश्वर ने कहा कि हम आदम को अपने स्वरूप में अपने समान बनावें तब ईश्वर ने आदम को अपने स्वरूप में उत्पन्न किया। उसने उसे ईश्वर के स्वरूप में उत्पन्न किया। उसने उन्हें नर और नारी बनाया'।

नया अनु०

'फिर परमेश्वर ने कहा कि हम मनुष्य को अपने स्वरूप के अनुसार अपनी समानता में बनायें तब परमेश्वर ने मनुष्य को अपने स्वरूप में उत्पन्न किया अपने ही स्वरूप के अनुसार उसने उनको उत्पन्न किया। नर और नारी करके उसने मनुष्यों की सृष्टि की'।

पुराने अनुवाद का 'आदम' नये में 'मनुष्य' बन गया है। केवल 'मनुष्य' ही नहीं वरन् 'मनुष्यों' का चोला कर बैठा है। मूलानुसार 'आदम' शब्द ही ठीक है। पर्व २, आयत ७, ८ के अनुसार आदम का मिट्टी से बनाया जाना वर्णित है। 'आदम' शब्द का अर्थ है मिट्टी से गूंध कर बनाया हुआ। स्वामी जी ने सृष्टि के आरम्भ में एक जोड़े के होने को असंगत सिद्ध करके सृष्टि के आरम्भ में अनेक स्त्री पुरुषों का होना माना है। अतः उससे डर कर यह परिवर्तन किया गया है। 'मनुष्य' और 'मनुष्यों' ये दोनों पद पृथक् मुद्रा में हैं। 'मनुष्यों' पद के लिये मूल में कोई शब्द नहीं है।

(३) नीति वचन १६।४

पुराना अनु०

'खुदावन्द ने हर एक चीज अपने लिये बनायी। हां, शरीरों को भी उसने बुरे दिन के लिये बनाया'।

नया अनु०

'यहोवा ने सब वस्तुएँ विशेष उद्देश्य के लिये बनाई हैं, वरन् दुष्ट लोगों को भी विपत्ति भोगने के लिये बनाया'।

'अपने लिये' तथा 'विशेष उद्देश्य के लिये' वाक्य खण्डों में जो अन्तर है, उसे अधिक स्पष्ट करने की आवश्यकता नहीं है। 'परमेश्वर निष्काम है, उसको संसार की वस्तुओं की क्या आवश्यकता'? स्वामी जी की इस तार्किक ललकार ने यह परिवर्तन कराया है।

(७) 'बाईबल भूलों से भरपूर है'। इस विषय पर यद्यपि पर्य्याप्त पीछे प्रकाश डाला जा चुका है, किन्तु कुछ एक प्रमाण यहां और दिये जाते हैं। पादरी सैण्डरलैण्ड ने अपने ग्रन्थ के पृष्ठ २४७ पर प्रोफेसर ब्रिग्स का एक वचन दिया है, उसका कुछ अंश हम यहां उद्धृत करते हैं :—"So far as I can see there are errors in the scriptures that no one has been able to explain away; and the theory that they were not in the original text is sheer assumption.........the Bible itself nowhere makes this claim." [जहां तक मैं देखता हूँ बाईबल में अशुद्धियां हैं और कोई इनका निराकरण (समाधान) नहीं कर सका। और यह मत कि यह भूलें मूल में नहीं थी, केवल कल्पना है.......बाईबल स्वयं कहीं भी ऐसा दावा नहीं करती]। इसके आगे ब्रिग्स महोदय ने कहा है :—"It is ghost of modern evangelists to frighten children." [बाईबल की निर्दोषता बच्चों को डराने के लिये वर्तमान पादरियों का बनाया हुआ एक भूत है]। इसी पृष्ठ पर श्री सैण्डरलैण्ड का यह कथन है :—".. or if tithe of what has been said in the preceeding pages is true there is not even a possibility that the Bible is infallible or inerrent." [पूर्व पृष्ठों में जो कुछ कहा गया है उसका दसवां भाग भी यदि सत्य है तो इस बात की तनिक भी सम्भावना नहीं कि बाईबल निर्दोष अथवा भूल चूक से रहित है]।

पुनः पृष्ठ २४६ पर सण्डरलेण्ड महोदय ने लिखा है :—"The Bible itself does not claim to be free from error...... There is no place in which the claim is made that the Bible as a whole, or even any considerable part of it, is infallible." [स्वयं बाईबल कहीं भी दावा नहीं करती कि वह भूल से रहित है.......बाईबल में कोई भी ऐसा स्थल नहीं है जिसमें यह दावा किया गया हो कि समूची बाईबल अथवा इसका कोई भी भाग दोष रहित है]।

पृष्ठ २५२ पर सैण्डरलैण्ड महोदय पुनः लिखते हैं :—"The truth

is, the doctrine of Bible infallibility, or inerrancy as taught in the modern world was unknown to Jesus, and unknown to early Christian Church. It did not come into existence untill the sixteenth and seventeenth centuries, and was not held by the earliest and greatest reformers Luther, Calvin, Zwingli and their associates. The Roman Catholic Church has never adopted it." [सत्य तो यह है कि बाईबल की निर्दोषता अथवा भूल चूक से रहित होने का सिद्धान्त जैसा कि वर्तमान संसार को दिखाया जाता है, पुराने यहूदियों को अज्ञात था, ईसा को अविदित था, और अज्ञात था प्रारम्भिक ईसाई चर्च को। सोलहवीं और सतरहवीं सदी से पूर्व इसका उद्भव नहीं हुआ था। और पुरातन एवं सर्वमहान्—लूथर, कालविन, ज्विंग्ली—सुधारकों एवं उनके सहयोगियों ने इसे नहीं स्वीकारा था। रोमन कैथोलिक चर्च ने इसे कभी अंगीकार नहीं किया]।

(८) बाईबल में परस्पर विरोध भी पर्य्याप्त है। इस विषय में पादरी सैण्डरलैण्ड इस प्रकार हमारा मार्गप्रदर्शन करते हैं :–"Both Testaments contain numerous contradictions. These furnish evidence so incontrovertible on the question before us, that we shall cite a considerable number, though only a small of all there are.

"Attention is called in another chapter to the contradiction between 2 Sam. XXIV. 1, and 1 Chronical XXI.1. In one of these passages are told that it was the Lord and in the other that it was Satan, who prompted David to do a certain thing, to number, or take a census of Israel. Of cource, both statements cannot be true unless the Lord and the Satan are the same being." (पृष्ठ २५२, २५३)।

"दोनों सुसमाचारों में अनेक परस्पर विरोध हैं। हमारी जो समस्या (अर्थात् बाईवल के भूलचूक से रहित होने न होने की) है उसके लिये यह अकाट्य साक्ष्य प्रस्तुत करते हैं। हम पर्य्याप्त संख्या में उद्धरण देंगे, किन्तु वे उस सबका एक थोड़ा सा भाग है।

"(२) शमुएल अध्याय २४, आयत १ तथा इतिहास की पुस्तक पहला भाग अध्याय २१ आयत १ के विरोध की ओर ध्यान आकर्षित कराया जाता है। इनमें से एक में तो यह कहा है कि परमात्मा ने इस्राएल की गणना करने के लिये दाऊद को उत्तेजित किया,× और दूसरे में शैतान को उत्तेजना देने वाला बतलाया गया है। निस्सन्देह दोनों सन्दर्भ सच्चे नहीं हो सकते, जब तक भगवान् और शैतान को एक न मान लिया जाये"।

आओ, हम कुछ परस्पर विरोधी सन्दर्भ साथ-साथ+ रखें।

(१) तनिक इन संदर्भों को मिलाइये :—

'प्रजा की गणना करने के बाद दाऊद का मन व्याकुल हुआ, और दाऊद ने यहोवा से कहा, यह काम जो मैंने किया है, वह महापाप है'
(२ शमुएल, २४।१०)।

'क्योंकि दाऊद वह किया करता था जो यहोवा की दृष्टि में ठीक था और हित्ती उरिय्याह की बात के सिवाय और किसी बात में यहोवा की किसी आज्ञा से जीवनभर कभी न मुड़ा' (१ राजा १५।५)।

×पाठकों की सुविधा के लिये दोनों संदर्भ हम यहां प्रस्तुत करते हैं:— 'और यहोवा का कोप इस्रायेलियों पर फिर भड़का और उसने दाऊद को इनकी हानि के लिये यह कह कर उभारा कि इस्रायेल और यहूदियों की गिनती ले' (२ शमुएल २४।१) 'और शैतान ने इस्रायेल के विरुद्ध उठकर, दाऊद को उकसाया कि इस्रायेलियों की गिनती ले' (इतिहास पहला भाग २१।१)।

एक ही कार्य के लिये एक ही को प्रेरणा हो रही है। किन्तु एक स्थान में प्रेरक भगवान् है, दूसरे में शैतान है। यह है प्रभुप्रदत्त इल्हाम !!!

+यहां से आगे इस प्रकरणविषयक पादरी सैण्डरलैण्ड के लेख का केवल भावानुवाद ही दिया गया है। बाईबल के संदर्भ १९५० की छपी बाईबल से दिये गये हैं। अन्यत्र भी उसी से हैं।

इन दोनों सन्दर्भों में से एक में तो हम दाऊद को ऐसा दर्शाया पाते हैं कि उसने इस्राएल की गिनती करने में पाप किया। और दूसरे में अपनी पत्नी हित्ती उरिय्याह को लूटने के सिवाय और किसी बात में कोई पाप नहीं किया।

(२) इन सन्दर्भों को मिलाइये:—

'इन बातों के पश्चात् ऐसा हुआ कि परमेश्वर ने, इब्राहीम से यह कह कर परीक्षा की' (उत्पत्ति २२।१)।

'हे यहोवा तू ने मुझे धोखा दिया और मैंने धोखा खाया' (यिर्मियाह २०।७)।

'जब किसी की परीक्षा हो तो वह यह न कहे कि मेरी परीक्षा परमेश्वर की ओर से होती है। क्योंकि न तो बुरी बातों से परमेश्वर की परीक्षा हो सकती है, और न वह किसी की परीक्षा आप करता है'÷ (याकूब की पत्री १।१३)।

यहां हमें एक ओर तो यह बताया गया है कि परमेश्वर कुछ एक व्यक्तियों की परीक्षा करता है, दूसरी ओर यह कहा गया है कि वह किसी की परीक्षा नहीं लेता। यिर्मियाह के सन्दर्भ में हमें कहा गया है कि परमेश्वर परीक्षा लेने से भी आगे बढ़ता है और उसे धोखा देता है।

(३) इन सन्दर्भों को मिलाइये:—

'पृथिवी सदा बनी रहती है' (सभोपदेशक १।८)।

'उसने पृथिवी को उसकी नींव पर स्थिर किया है ताकि वह कभी न डगमगाये' (भजनसंहिता १०४।५)।

'और पृथिवी और उस पर के सब काम जल जायेंगे' (पतरस की दूसरी पत्री ३।१०)।

'वे तो नाश हो जायेंगे' परन्तु तू बना रहेगा' (इब्रानियों के नाम पत्री १।११)।

(४) और इन का भी मिलान कीजिये :—

'और एलिय्याह बवंडर में होकर

'और कोई स्वर्ग पर नहीं चढ़ा,

÷यह पुरातन तथा नूतन सुसमाचारों का पारस्परिक विरोध है।

स्वर्ग पर चढ़ गया'

(२ राजा २।११)।

केवल वही जो स्वर्ग से उतरा अर्थात् मनुष्य का पुत्र जो स्वर्ग में है'

(यूहन्ना ३।१३)।

(५) इन्हें भी मिलाइये :—

'जो कोई परमेश्वर से जन्मा है वह पाप नहीं करता,……* और वह पाप कर ही नहीं सकता, क्योंकि परमेश्वर से जन्मा है' (यूहन्ना की पहली पत्री ३।९)।

'निष्पाप तो कोई मनुष्य नहीं है'

(१ राजा, ८।४६)।

'निस्सन्देह पृथ्वी पर कोई ऐसा धर्म्मी मनुष्य नहीं जो भलाई ही करे और भूल न करे' (सभोपदेशक ७।२०)।

(६) इन्हें भी मिलाइये :—

(क) 'तब नूह ने यहोवा के लिए एक वेदि बनाई, और सब शुद्ध पशुओं और सब शुद्ध पक्षियों में से कुछ कुछ लेकर वेदि पर होमबलि चढ़ाया। इस पर यहोवा ने सुखदायक सुगन्ध पाकर सोचा, कि मनुष्य के कारण मैं फिर कभी भूमि को शाप न दूंगा'

(उत्पत्ति ८।२०,२१)।

(क) 'क्यों तू मेल बलि में प्रसन्न नहीं होता, नहीं तो मैं देता, होमबलि से भी तू प्रसन्न नहीं होता' (भजन संहिता (५१।१६)।

(ख) 'और एक होमबलि चढ़ाना जिस से यहोवा के लिए सुखदायक सुगन्ध हो अर्थात् दो बछड़े, एक मेंढा और एक एक वर्ष के सात भेड़ के बच्चे' (गिनती २८।२७)।

(ख) 'मैं बछड़ों वा भेंड़ के बच्चों वा बकरों के लोहू से प्रसन्न नहीं होता' (यशायाह १।११)।

---

*पादरी सैण्डरलैण्ड से यहां एक वाक्यखण्ड छूट गया है। इंग्लैंड की बाईबल में वह है :—"For His seed remainth in him" अमरीकी संस्करण में वह है:—"For God's nature abides in him." 'Seed' (बीज) को नये अनुवाद में 'nature' (स्वभाव) बना दिया गया है।

(ग) 'तुम होमवलि यहोवा को सुखदायक सुगन्ध देने के लिये हव्य करके चढ़ाना, अर्थात् तेरह बछड़े और दो मेंढे और एक एक वर्ष के चौदह भेंड़ के बच्चे,' [ये सब निर्दोष हों]। (गिनती २६।१३)।

(ग) 'मैं क्या लेकर यहोवा के संमुख आऊँ ?...क्या यहोवा हजारों मेंढों से तेल की लाखों नदियों से प्रसन्न होगा ? और यहोवा तुझ से इस को छोड़ और क्या चाहता है कि तू न्याय से काम करे, और कृपा से प्रीति रखे और अपने परमेश्वर के संग संग नम्रता से चले' (मीका ६।६—८)।

(७) निम्नलिखित को भी मिलाइये :—

(क) 'ऐसा अन्धियारा वा घोर अन्धकार कहीं नहीं है। जिसमें अनर्थ करने वाले छिप सकें'

(अय्यूब ३४।२२)।

(क) 'तब आदम और उसकी पत्नी वाटिका के वृक्षों के बीच यहोवा परमेश्वर से छिप गये'

(उत्पत्ति ३।८)।

(ख) 'और दाऊद ने उससे एक रथ और सात सौ सवार....छीन लिए' (२ शमुएल ८।४)।

(ख) 'और दाऊद ने उससे एक हजार रथ और सात हजार सवार... छीन लिए' (२ शमुएल १८।४)।

(ग) 'और शाऊल की बेटी मीकल के मरने के दिन तक उसके कोई सन्तान न हुआ' (२ शमुएल ६।२३)

(ग) 'और शाऊल की बेटी मीकल के पांचों बेटे..........'

(२ शमुएल २१।८)।

(घ) 'जो मनुष्य उसके (पाल के) साथ थे वे चुपचाप रह गये, क्योंकि शब्द तो सुनते थे परन्तु किसी को देखते न थे'

(प्रेरितों के काम ६।७)।

(घ) 'और मेरे साथियों ने ज्योति तो देखी परन्तु जो मुझ से बोलता था उसका शब्द न सुना'

(प्रेरितों के काम २२।६)।

(ङ) 'कि परमेश्वर को आम्हने साम्हने देखने पर भी...........'

(उत्पति ३२।३०)।

(ङ) 'परमेश्वर को किसी ने नहीं देखा' (यूहन्नाकी पहली पत्री ४।१२)।

(८) और निम्नलिखित को भी मिलाइये:—

(क) 'मैं यहोवा तो नहीं बदलता' (मला की ३।६)।

'जिस में न तो कोई परिवर्त्तन हो सकता है और न अदल बदल के कारण उस पर छाया पड़ती है' (याकूब की पत्री १।१७)।

(क) 'तब परमेश्वर ने अपनी इच्छा बदल दी और उनकी जो हानि करने की ठानी थी, उसको न किया' (योना ३।१०)।

(ख) 'मैं तुझे न छोड़ूंगा...न पछताऊंगा' (यहेजकेल २४।१४)।

(ख) [बाईबल में कम से कम चौदह ऐसे स्थल हैं जहां परमेश्वर के पछताने वा वर्णन है]

(ग) 'क्योंकि परमेश्वर किसी का पक्ष नहीं करता' (रोमियों के नाम पौलुस प्रेरित की पत्री २।११)।

(ग) 'मैंने याकूब से प्रेम किया और एसौ को अप्रिय जाना' (रोमियो० ६।१३ तथा १०।१८)।

(घ) +'वैसे ही अधोलोक में उतरने वाला फिर वहाँ से नहीं लौट सकता' (अय्यूब ७।६)।

(घ) क्योंकि तुरही फूंकी जायेगी और मुर्दे अविनाशी दशा में उठाये जायेंगे' (१ कुरन्थियों के नाम पौलुस प्रेरित की पहली पत्री १५।५२)।

ईसाचरितों में परस्पर विरोध

स्थालीपुलाक न्याय से उन्होंने नूतन समाचार के प्रधान नायक ईसा के सम्बन्ध में. पृष्ठ २५७ से २५६ तक कई घटनाओं के परस्पर विरोधी वर्णनों

+इन दोनों 'घ' अंशों का हिन्दी अनुवाद बदल दिया गया है। बायीं ओर के 'घ' में अंग्रेजी 'Authorised Version' के अनुसार 'grave' शब्द है जिसका अनुवाद 'कब्र' है, इसका अनुवाद 'अधोलोक' कर दिया गया है। दाहिनी ओर के 'घ' में 'अविनाशी दशा में' वाक्यांश अंग्रेजी से अधिक है। यह दोनों परिवर्तन अमरीकी संस्करण के आधार पर किये गये हैं। यह विस्मरण न करना चाहिये कि अमरीकी संस्करण ऋषि के देहत्याग के पर्याप्त पश्चात् प्रकाशित हुआ।

का निरूपण किया है । डाक्टर सैण्डरलैण्ड ईसा के वाल्यकाल के चरित चित्रण में 'लूका' और 'मत्ती' के वर्णनों में विरोध पाते हैं। 'लूका' के अनुसार ईसा का जन्म वेतुल्लहम में हुआ था जिसके पश्चात् (२।२२) उसके माता पिता मन्दिर में कुछ धार्मिक कृत्य कराने के लिये उसे 'येरुसलेम' में ले आये । वहां से तुरन्त वे (२।३६) अपने देश गालील के नगर 'नजरथ' को चल दिये । वहां से प्रति-वर्ष वे 'येरुसलेम' जाया करते थे। इस प्रकार ईसा के वाल्यकाल के १२ वर्षों का कुछ पता लगता है। किन्तु मत्ती (२) में हमें इससे एक विभिन्न कथा मिलती है । ईसा के माता पिता, उसके जन्म के पश्चात् उसे 'नजरथ' न ले जाकर मिश्र में ले जाते हैं । ईसा की, 'लूका' और 'मत्ती' में, दी गई वंशाव-लियों में समन्वित न हो सकने वाला विरोध है।

'मरकुस' में लिखा है कि वपतिस्मा लेने के पश्चात् ईसा वन में चला गया और वहां चालीस दिन तक रहा। किन्तु इसके विपरीत 'यूहन्ना' में पढ़ते हैं कि वपतिस्मा के तीसरे दिन ईसा गालील देश के कना नगर में एक विवाह में सम्मिलित हुआ। उसके वनगमन का कोई वर्णन वहां नहीं है। पौलुस (१ कुरन्थियो० १५।५) कहता है कि ईसा के पुनरुत्थान के पश्चात् उसके बारह शिष्यों ने उसके दर्शन किये। किन्तु तब तो उसके दर्शन करने को बारह शिष्य थे ही नहीं, ग्यारह थे, क्योंकि हमें वताया जाता है कि 'यहूदा' ने अपने आप को फांसी लगा ली थी।

तात्पर्य यह कि ईसा का चरित भी इंजीलों में विश्वसनीय रूप से अंकित नहीं है।

बाईबल में बेहूदा बातें

"The Bible contains many things intrinsically absurd. For example, the statement that the first woman was made of a rib taken out of the first man's side; the accounts of a serpant, and of an ass, talking; the stories of Jonah living three days in a fish (Me-tthew XII. 40) (common version says a whale) and of

Nebuchadrezzer eating grass like an ox for seven years. When we find such stories as these in any of the sacred books of the word except our own, we do not for a moment think of believing them. We say that are so absurd that of course we cannot believe them. But do they become any less absurd by being found in our own sacred books." [बाईबल में कई बातें सर्वथा बेहूदा हैं, उदाहरणार्थ—यह वर्णन कि पहली स्त्री पहले मनुष्य के पहलू से निकाली गई पसली से बनाई गई थी, सर्प की कथा, गदहे की बोलने की कथा, 'याकूब' का तीन दिन तक मछली (ह्वेल) के पेट में रहना, और 'नेबचद्रेज्जर' का बैल की भांति सात वर्ष तक घास खाना। जब हम इस प्रकार की कथायें अपने से भिन्न संसार के किसी दूसरे धर्म्मग्रन्थ में पाते हैं, हम एक क्षण के लिये उन पर विश्वास करने का विचार नहीं कर सकते। किंतु, क्या हमारे अपने धर्म्मग्रन्थों में मिलने पर वे कम बेहूदा हो जाती हैं ?]।

ऐतिहासिक भूलें

इस संदर्भ में पर्य्याप्त ऐतिहासिक भूलें दिखायी जा चुकी हैं। पादरी सैण्डरलैण्ड ने कुछ और भूलें दिखाकर लिखा है :—"It is not enough for an inerrant book to be generally reliable; it must be accurate in every thing. If it errs in anything its infallibility is gone." (पृष्ठ २६२) [भूल से रहित पुस्तक के लिये सामान्य रूप में विश्वसनीय होना ही पर्याप्त नहीं है, इसे प्रत्येक बात में यथार्थ होना चाहिये। यदि यह किसी बात में भूल करती है तो इसकी निर्दोषता नष्ट हो जाती है]।

विज्ञान विरुद्ध

बाईबल में अनेक विज्ञान विरुद्ध बातों का समावेश है। पादरी सैण्डर-लैण्ड ने दो एक ही उदाहरण प्रस्तुत किये हैं। लैव्यवस्था के ग्यारहवें पर्व में भक्ष्याभक्ष्य पशुओं आदि का परिगणन किया गया है। उसमें खरहा (शश)

को जुगाली करने वाला पशु कहा गया है। यह विज्ञान विरुद्ध है, क्योंकि खरहा जुगाली नहीं करता। इसी प्रकार सृष्टि-उत्पत्ति तथा जलप्रलय का वर्णन भी विज्ञान विरुद्ध है। यहोशू के आदेश पर सूर्य का निश्चेष्ट रहना भी विज्ञान विरुद्ध है।

अतिशयोक्ति

मथेसेलाह का ६६६ वर्ष तक जीना, ईनोस का ६०५ वर्ष तक जीवित रहना, और कि लमेक की आयु उस समय १८० वर्ष की थी जब उसका प्रथम पुत्र उत्पन्न हुआ, आदि वर्णन अतिशयोक्तिपूर्ण हैं। इतिहास के १३ वें पर्व में यहूदियों की सेनाओं की संख्या भी अतिशयोक्तिपूर्ण है। अबीजाह के आधीन चार लाख और जोरीबोआम के आधीन आठ लाख चुने मनुष्य थे। पा० सैण्डर-लैण्ड इस विषय में लिखते हैं :—"That this must be an enormous exaggeration—utterly beyond possible truth—will appear when we remember that whole country of Palestine from where these 1,200,000 'chosen mighty men of valor' were raised at one time, was not as large as the little country of Wales." [यह अवश्य बहुत बड़ी अतिशयोक्ति है, और सम्भवित सत्य से सर्वथा दूर है, यह इस बात से स्पष्ट हो जायेगा, जब यह स्मरण करेंगे कि फिलिस्तीन, जिससे एक समय यह 'चुने हुए' १,२००,००० महावीर संग्रहीत किये गये, वेल्ज के छोटे देश के तुल्य भी बड़ा न था"।

इसी प्रकार 'बैत-शम्स' (एक तुच्छ सा कस्बा) की जनसंख्या आदि अतिशयोक्ति के नमूने हैं।

बाईबल में परमात्मा का स्वरूप

पादरी सैण्डरलैण्ड लिखते हैं :—"No candid reader of Bible can deny that it contains representations of God according to which he is not a morally perfect being" (२६४ पृष्ठ)।

"कोई भी बाईवल का, निष्पक्ष पाठक इससे इन्कार नहीं कर सकता कि इसमें परमात्मा का ऐसा वर्णन है जिसके अनुसार यह पूर्ण शिष्ट प्राणी भी नहीं है" ।

डा० सैण्डरलैण्ड ने इसके कुछ उदाहरण दिये हैं, हम उन्हीं में से कुछ एक यहां देते हैं :—

निर्गमन ७।१३ तथा ११।१० में परमात्मा ने फिरऔन का हृदय कठोर कर दिया कि यह इस्राएल की सन्तान को मिश्र से वाहर न जाने दे । और पुनः उसको, उनको न जाने देने के कारण, कठोरतम रीति से दण्डित किया । इस सम्वन्ध में पादरी सैण्डरलैण्ड लिखते हैं :—"Would this have been right on the part of God, certainly not, unless morality is altogether lower and poorer thing with God than it is with us." (पृ० २६४) ।

"क्या परमेश्वर के लिये यह उचित था । सचमुच नहीं, यदि परमात्मा के यहां सदाचार हमारी अपेक्षा नीचा और तुच्छतर न हो "।

इसी प्रकार परमात्मा ने मूसा को आदेश दिया कि वह मिश्र के राजा से कहे कि 'हम तुझ से प्रार्थना करते हैं कि हमें तीन दिन की यात्रा पर वन में जाने दे कि हम अपने परमात्मा यहोवा के लिए बलि दें' । परन्तु उनके जाने का उद्देश्य यह न था, किन्तु मिश्र देश से सर्वथा वचकर निकल जाना और कभी वापस न आना उनका लक्ष्य था । अर्थात् परमात्मा ने मूसा को झूठ बोलने का आदेश किया ।

इसके साथ ही हमें बताया जाता है कि परमात्मा ने यहूदियों को आदेश किया, कि जब वे अपनी यात्रा पर जाने को उद्यत हो जायें तव अपने मिश्री पड़ोसियों से प्रत्येक मूल्यवान् पदार्थ उधार ले लें और उसे अपने साथ ले जायें । इस प्रकार उन्हें लूटने एवं झूठ बोलने का आदेश दिया गया ।

जब इस्राएली वन में थे, तब उनमें एक विद्रोह उठ खड़ा हुआ, उस विद्रोह के नेता 'कोराह' 'राथन' तथा 'अबिराम' ये तीन मनुष्य थे । इस पर परमात्मा ने 'मूसा' तथा 'हारून' को शेष लोगों से तुरन्त पृथक् होने का आदेश दिया ताकि वह दूसरों को अग्नि से भस्म कर दे । किन्तु 'मूसा' तथा 'हारून' ने

परमात्मा से प्रार्थना की कि एक मनुष्य के अपराध के लिये सारी संगत पर क्रोध न करे। तथापि इस पर भी चौदह हजार सात सौ मनुष्य प्लेग (महामारी) से मर गये और विद्रोहियों में से भी दो सौ पच्चास को भूकम्प ने निगल लिया। प्लेग तो सब को चट कर जाती, किन्तु 'मूसा की आज्ञा के अनुसार धूपदान लेकर मण्डली के बीच दौड़ गया, ...उसने धूप जलाकर लोगों के लिये प्रायश्चित्त किया......तब मरी थम गई'। यह कथा गिनती १६।२०-५० में है। पादरी सैण्डरलैण्ड इसी संबन्ध में लिखते हैं :—"Thus Aaron and Moses are represented as not only more merciful but more just than God." (पृष्ठ २६५) [इस प्रकार 'हारून' और 'मूसा' परमात्मा की अपेक्षा न केवल अधिक दयालु दिखाये गये हैं, किन्तु अधिक न्यायी दिखाये गये हैं]।

यहोशू के दसवें पर्व में आता है :—"और यहोवा ने, यहोशू से कहा, उनसे मत डर, क्योंकि मैंने उनको तेरे हाथ कर दिया है उनमें से एक पुरुष भी तेरे सामने टिक न सकेगा। तब यहोशू रातों रात गिलगाल से जाकर एकाएक उन पर टूट पड़ा (८-१०)......। तब अजेका पहुँचने तक यहोवा ने आकाश से बड़े-बड़े पत्थर उन पर बरसाये और वे मर गये। जो ओलों से मारे गये उनकी गिनती इस्राएलियों की तलवार से मारे हुओं से अधिक थी (११)। इस प्रकार यहोशू ने उस सारे देश को अर्थात् पहाड़ी देश, दक्खिन देश, नीचे के देश और ढालू देश को, उनके सब राजाओं समेत मारा, और इस्राएल के परमेश्वर यहोवा की आज्ञा के अनुसार किसी को जीवित न छोड़ा, वरन् जितने प्राणी थे सभों को नाश कर डाला। और यहोशू ने कादेशबर्ने से ले अज्जा तक और गिबोन तक के सारे गोशेन देश के लोगों को मारा .... क्योंकि इस्राएलियों का परमेश्वर यहां इस्राएलियों की ओर से लड़ता था" (४०-४२)।

पादरी सैण्डरलैण्ड का कथन है कि परमात्मा ने कुछ नगरों के लोगों की हत्या के लिये यहोशू को आदेश दिया केवल इसलिये कि वह यहोशू और उसके अनुयायी उनके नगरों एवं सम्पन्न भूमि पर अधिकार कर सकें। अपने ग्रन्थ में इसके आगे पादरी सैण्डरलैण्ड लिखते हैं :—"Now if the Koran, contained records of such commands, said to have

been given by the God of Mohammadans to a Mohammadan general, Christian men would never make an end of pointing to them as illustrations of the low and degraded ideas about God taught by Mohammadanism. But if such ideas of God would be low and imperfect as taught in the Koran, are they less low and imperfect when taught in our Old Testament." (पृष्ठ २६५)। [अब, यदि कुरान में ऐसे आदेशों के अभिलेख पाये जाते जिसमें मुसलमानों के परमेश्वर ने एक मुसलमान जनरल को (ऐसा करने का) आदेश दिया, तो ईसाई लोग इस्लाम द्वारा परमेश्वर के संबन्ध में इस निकृष्ट और पतित विचार की ओर संकेत करते न थकते। किन्तु परमात्मा के संबन्ध में कुरान में निर्दिष्ट होने के कारण ये विचार निकृष्ट और अधूरे हैं, तो क्या वे हमारे पुरातन सुसमाचार के द्वारा सिखाये जाने पर कम निकृष्ट और कम अधूरे हो जायेंगे ?]।

इसके पश्चात् वह १,२ राजा, ६, १० पर्वों में वर्णित येहू के अत्याचारों का वर्णन करते हैं। यह अत्याचार परमात्मा यहोवा के आदेश से हुए 'इस्राएल का परमेश्वर यहोवा यों कहता है कि मैं अपनी इस्राएल का राजा होने के लिये तेरा अभिषेक कर देता हूँ, तू अपने स्वामी अहाब के घराने को मार डालना' (६, ६, ७) पादरी सैण्डरलैण्ड इसके आगे चलकर लिखते हैं :—"It is easy enough to see that Jehu only acted like an unscrupulous usurper, who finds the safety of his thrown dependent upon the extermination of the late dynasty, while his slaughter of the worshippers of Baal was done partly as a sop to the priests of Jehovah and partly to crush all lingering sympathy with the house of Ahab in the minds of the people. He was a consummate dissembler, hypocrite and murderer; and yet the Bible tells us that he did according to 'all that was

good in God's eyes,' and received for so doing God's approval and reward" (पृष्ठ २६६) [यह जानना पर्याप्त है कि येहू ने एक असन्दिग्ध अपहर्त्ता की भांति कार्य किया जिसे पूर्व राजवंश के सर्वनाश पर ही अपने सिंहासन की रक्षा प्रतीत होती है। उसके द्वारा बाल के पूजकों की हत्या अंशतः तो यहोवा के पूजारियों की प्रसन्नता के लिये थी और अंशतः कुछ लोगों के हृदय में अहाव के परिवार के प्रति अवशिष्ट ढिलमिली सहानुभूति को कुचलने के लिये थी। वह पूर्ण छली, पाखण्डी तथा एक हत्यारा था, किन्तु उस पर भी बाईवल हमें यह बतलाती है कि उसने वह सब किया जो परमेश्वर के मन में था और कि वह सब परमात्मा की दृष्टि में भला था और ऐसा करने के लिये परमात्मा का उसे अनुमोदन प्राप्त था और उसे परमात्मा से पारितोषिक मिला]।

पादरी सैण्डरलैण्ड इस पर पूछते हैं:—"What shall we say to all this ? Shall we today in the light of civlization and of Christianity, accept such low and unworthy views of God ? Can we for a moment maintain the inerrancy of the book that contains them." (पृष्ठ २६६) [हम इस सब के लिये क्या कहेंगे ? क्या आज हम सभ्यता एवं ईसाइयत के प्रकाश में परमात्मा के संबन्ध में ऐसे नीच एवं अयोग्य विचारों को रख सकेंगे ? क्या हम उस पुस्तक की निर्दोषता का प्रतिपादन भी कर सकेंगे जिसमें ये बातें हैं]।

अनुचित कार्यों का उपदेश

पुरातन सुसमाचार में ऐसे अनेक स्थल हैं जिनमें प्रत्यक्ष वा परोक्ष रूप में ऐसे उपदेश हैं जो अनुचित हैं। उदाहरणार्थ—निर्गमन २२।१८ में हम यह आदेश पढ़ते हैं :—'तू+डाइन को जीवित रहने न देना'। पादरी सैण्डरलैण्ड इस पर लिखते हैं:—"This command to put witches to death, it is probably safe to say, has resulted in the

+अंग्रेजी में 'witch' लिखा है उसका एक अर्थ जादूगरनी, भी होता है।

hanging, burning drowning and kiling in one way or another, of hundreds of thousands of innocent persons" (पृष्ठ २६६) [डायनों, जादूगरनियों की हत्या-संबन्धी इस आदेश का फल, संभवतः ऐसा कहना उचित है—लाखों निर्दोष व्यक्तियों को किसी न किसी रूप में फांसी चढ़ाने, जलाने, डुबाने और किसी न किसी रूप में मारने में निकला है]।

व्यवस्था विवरण २१।१-२१ में यह आदेश है :—"यदि किसी के हठीला और दंगैत वेटा हो, जो अपने माता पिता की बात न माने, किन्तु ताड़ना देने पर भी उनकी न सुने, तो उसके माता पिता उसे पकड़ कर अपने नगर से बाहर, फाटक के निकट, नगर के सियानों के पास ले जायें। और वे नगर के सियानों से कहें, कि हमारा यह वेटा हठीला और दंगैत है, यह हमारी नहीं सुनता, यह उड़ाऊ और पियक्कड़ है। तब नगर के सब पुरुष उसको पत्थराव करके मार डालें। तू अपने मध्य में से ऐसी बुराई को दूर करना तब इस्राएली सुनकर भय खायेंगे"। इस पर पादरी सैण्डरलैण्ड ने बहुत वढ़िया लिखा है :—"Think of the enactment of such a law, by one of our legislatures, and its attempted enforcement by the civil authorities. How long before the public conscience would condemn it not only unjust and cruel, but horrible......" (पृष्ठ २६६-२६७) [हमारी किसी विधानसभा द्वारा ऐसी विधि (कानून) के बनाये जाने, और 'सिविल' अधिकारियों के द्वारा इसके कार्यान्वित करने की चेष्टा की कल्पना कीजिये। कितनी शीघ्रता से जनता की चेतना इसे न केवल अन्याय्य, और कठोर ही नहीं प्रत्युत भयंकर कह इसका तिरस्कार नहीं करती]।

इसी व्यवस्था विवरण के १४।२१ में हम पढ़ते हैं कि :—'जो अपनी मृत्यु से मर जाये उसे तुम न खाना, उसे अपने फाटकों के भीतर किसी परदेसी को खाने के लिये दे सकते हो, वा किसी पराये के हाथ वेच सकते हो' इस पर पादरी सैण्डरलैण्ड प्रश्न करते हैं :—"How does such a way of disposing of bad meat harmonize with the Golden

Rule ?" (पृष्ठ २६७)।[बुरे मांस को संगवाने का ऐसा प्रकार किस प्रकार सुनहरी नियम सें समन्वित हो सकता है ?]।

भजनसंहिता १०९ में हमें ये प्रार्थनायें मिलती हैं कि जिनमें अपने विरोधियों के लिये यह मांगा गया है :—'तू उसको किसी दुष्ट के अधिकार में रख' (६)। 'और उसकी प्रार्थना पाप गिना जाये'। (७) 'उसके दिन थोड़े हों और उसके पद को दूसरा ले' (८)। 'उसके लड़के अनाथ हो जायें और उसकी स्त्री विधवा हो जाये। और उसके लड़के मारे-मारे फिरें, और भीख मांगा करें; उनको अपने उजड़े हुए घर से दूर जाकर टुकड़े मांगना पड़े। महाजन फन्दा लगा कर उसका सर्वस्व ले लें; और परदेशी उसकी कमाई को लूट लें। कोई न हो जो उस पर करुणा करता रहे, और उसके अनाथ बालकों पर कोई अनुग्रह न करे। उसका वंश नाश हो जाये। दूसरी पीढ़ी में उसका नाम मिट जाये' (९—१३)। भजनसंहिता १३७।९ में यह प्रार्थना है:—'क्या ही धन्य वह होगा जो तेरे बच्चों को पकड़कर चट्टान पर पटक देगा'। इस पर पादरी सैंण्डरलैण्ड प्रश्न करते हैं :—"Were the psalmists inspired who wrote these words ? If so, then it becomes a serious question—was it by God or by the Devil ?" (पृष्ठ २६७) [जिन्होंने यह शब्द लिखे क्या वे भजन निर्माता इल्हामी थे (लोकोत्तर प्रेरणा से भावित थे) ? यदि हां, तो यह गम्भीर प्रश्न बन जाता है—कि वे परमात्मा से प्रेरित थे वा शैतान से ?]।

लै व्यवस्था में दासप्रथा का विधान है, और वह भी सदा के लिये; यथा :—'तेरे जो दास दासियाँ हों वे तुम्हारे चारों ओर की जातियों में से हों और दास दासियां उन्हीं में से मूल लेना······और तुम अपने पुत्रों को भी जो तुम्हारे बाद होंगे उनके अधिकारी कर सकोगे और वे उनका भाग ठहरें उनमें से तुम सदा अपने लिये दास लिया+करो' (२५।४४-४६)। पादरी सैंण्डरलैण्ड की टिप्पणी में यहाँ यह वाक्य देखने योग्य है :—"They are a part of

---

+अनुवाद में पादरियों ने, समय की चाल देखकर परिवर्तन कर दिया है।

it's teaching, however. This fact no man can evade." (पृष्ठ २६७) [तथा ये बाईबल की शिक्षाओं का एक भाग है। इसका कोई मनुष्य निषेध नहीं कर सकता]।

बाईवल एक बहुत बड़ा ग्रन्थ है। छोटे बड़े छियासठ ग्रन्थों का यह समुदाय है। पुरातन सुसमाचार में ३९ ग्रन्थ हैं और नूतन में २७ हैं। स्वामी दयानन्द ने इसके अत्यल्प भाग की ही आलोचना की है। योरुपीय कट्टर ईसाई विद्वानों ने स्वयं इसकी तीव्र आलोचना की है। पादरी सैण्डरलैण्ड बाईवल के भक्त हैं, किन्तु उनको भी बाईवल में अनेक दोष दृष्टिगोचर हुए हैं। वे ईसाई होते हुए विकासवादी हैं, अतः वे अपना सन्तोष कर लेते हैं कि पुरातन सुसमाचार यहूदियों की प्राथमिक अवस्था का परिचायक है। अतः उसमें धर्म का इतना उदात्तरूप नहीं है। शनैः शनैः उनका ज्ञान बढ़ता गया और बाईवल का उत्कर्ष नूतन सुसमाचार और उसमें भी ईसा के चरित में पूर्ण परिपाक को पहुँचा है।

विकासवादी पादरी सैण्डरलैण्ड इंजील पर आकर क्यों रुक गये? विकासवाद के अनुसार ईसा के पश्चात् आने वाले ईसाई ईसा से अधिक उन्नत होने चाहियें।

स्वामी दयानन्द का इस समीक्षा के लिखने का एक महान् उद्देश्य था, जिसको न समझकर तत्तत् मत वालों ने स्वामी जी पर अपना रोप प्रकट किया है। स्वामी जी सब मतवादियों को कहना चाहते हैं कि जब संसारव्यवहार में पदे पदे आप तर्क का प्रयोग करते हैं तो धर्म व्यवहार में तर्क का क्यों त्याग करते हो? स्वामी जी के सामने तो मनु महाराज का यह आदेश है :— "यस्तर्केणानुसन्धत्ते स धर्म्मं वेद नेतरः" (१२।१०६) [जो तर्क के द्वारा अनुसन्धान करता है, खोज करता है, वही धर्म को जान पाता है, दूसरा नहीं]। उन्होंने इस तर्क का प्रयोग केवल परमतियों पुराणियों, जैनों, किराणियों एवं कुरानियों के धर्मग्रन्थों की ही परीक्षा के लिये नहीं किया, प्रत्युत वेद को भी इस कषवटी पर कसा। वेद को खरा सोना पाकर उसके आगे माथा झुका दिया। अन्य मतों के ग्रन्थों के यथाश्रुत, प्रचलित अर्थों, सिद्धान्तों एवं परम्पराओं को तर्क की तुला पर पूरा उतरता न देख उन उनके कल्याण के लिये

आलोचना के द्वारा उनके मनोमन्दिर में प्रसुप्त तर्क देव को जगाने का प्रबल प्रयत्न किया। हमें यह लिखते हुए हर्ष होता है कि स्वामी जी को इसमें पूर्ण सफलता मिली।

(४)

इस्लामी सिद्धान्तों में परिवर्तन

पुराणियों जैनों एवं किराणियों पर स्वामी जी की आलोचना से उत्पन्न प्रतिक्रिया का उल्लेख पूर्व किया जा चुका है। कुरानियों पर हुई प्रतिक्रिया का अतिसंक्षिप्त विवरण यहाँ प्रस्तुत करने लगे हैं। इसको पढ़ने से स्वामी जी के कार्य का गौरव समझ में आ सकेगा।

स्वामी दयानन्द ने वैदिक धर्म का निरीक्षण किया कि इसका मूलाधार 'वेद' है उसे 'श्रुति' भी कहते हैं। वेद के पश्चात् जो इस धर्म का प्रतिपादन करने के लिये ग्रन्थ बने, उनका नाम स्मृति है, चाहे वे ब्राह्मण ग्रन्थ हों, आरण्यक हों, उपनिषद् हों, धर्मशास्त्र हों, अङ्ग हों, उपाङ्ग हों, वे सभी स्मृति कोटि में परिगणित होते हैं। 'ब्रह्मा' से लेकर 'विरजानन्द' पर्यन्त सभी ऋषियों मुनियों का सिद्धान्त है कि 'श्रुति' और 'स्मृति' में विरोध होने पर 'श्रुति' माननीय है, 'स्मृति' का आदेश उपेक्ष्य है। इस सिद्धान्त के आधार पर ऋषिराज ने स्थान-स्थान पर लिखा कि ब्राह्मणादि ग्रन्थों में जो वेदविरुद्ध वचन हैं, वे अप्रमाण हैं। अतः वेदार्थ करने के लिये मुख्य आधार वेद ही है। स्वामी जी की इस घोषणा से मुस्लिम विद्वन्मण्डल ने पूरा लाभ उठाया। उनमें से कुछ ऐसे वीर निकले, जिन्होंने कुरानशरीफ के सब पुरातन भाष्यों को एक ओर रख दिया, और कुरान का अनुवाद स्वयं कुरान के आधार पर करने का प्रयत्न किया। इनमें प्रमुख सर सैयद अहमद खाँ हैं। यह सबको विदित है कि सर सैयद अहमद खाँ श्री स्वामी जी के निष्ठावान सत्संगी भक्त थे। वे प्रायः स्वामी जी की सत्संग गंगा में स्नान किया करते थे। उन्होंने स्वामी जी के मुखारविन्द से अनेक बार कुरानशरीफ की आलोचना सुनी थी। स्वामी जी की आलोचना का आधार उस समय के प्रचलित, कुरान के भाष्यादि थे।

यह तो सबको विदित है कि स्वामी दयानन्द पहले महामानव हैं, जिन्होंने कुरानशरीफ का आर्य भाषा में अनुवाद कराया और कि जो अनुवाद उन्होंने करवाया वह अति सुबोध और सरल था। उनसे पूर्व जो अनुवाद उर्दू भाषा में थे, वे मूल कुरान के शब्दों के नीचे अनुवाद देकर किये गये थे। प्रत्येक भाषा के प्रयोगों का अपना निराला ही प्रकार होता है। जिस शैली से उर्दू वा अन्य भारतीय भाषायें बोली वा लिखी जाती हैं, अरबी उस प्रकार से नहीं लिखी बोली जाती। अतः उसके प्रयोग के अनुसार किये गये अनुवाद मुसलमानों के लिये भी दुर्बोध रहे। जिन लोगों को इस्लामी सिद्धान्तों एवं परम्पराओं का ज्ञान नहीं था, उसे कैसे समझ सकते। ऋषि दयानन्द ने पाठकों की इस कठिनता का अनुभव करके भाषा शैली के अनुसार अनुवाद कराया। ऋषि की इस शैली को पसन्द किया गया। डिप्टी नजीर अहमद ने इसका अनुसरण किया, तथा जालन्धर निवासी मौलवी फतह मुहम्मद ने उसका परिष्कार किया और अपना एक स्वतन्त्र अनुवाद भी किया। उसके पश्चात् तो इसका चलन हो गया।

ऊपर हमने सर सैयद अहमद खां की चर्चा की है। उन्होंने उर्दू भाषा में कुरानशरीफ का विस्तृत भाष्य लिखा। उसमें उन्होंने 'बहिश्त' (स्वर्ग) 'दोज़ख' (नरक), 'फरिश्ते', 'जिन्न', 'शैतान' आदि की बुद्धिगम्य तर्कसंगत व्याख्या की, उस भाष्य पर स्वामी जी की छाप स्पष्ट दीखती है। इसमें सन्देह नहीं कि उनके इस भाष्य का तथा इस भाष्य के कारण स्वयं उनका भी पर्याप्त विरोध हुआ। उन्हें 'नेचरिया' (प्रकृतिवादी) 'दहरिया' (नास्तिक) आदि पदों से विभूषित किया गया। किन्तु सर सैयद अहमद खाँ तनिक भी विचलित न हुए, वे अपने सत्कार्य में लगे रहे। उनका लक्ष्य था कुरानशरीफ की तर्क-संगत एवं विज्ञानानुमोदित व्याख्या करना।

उनसे प्रेरणा पाकर अथवा स्वतन्त्रता से विचार करके अहमदी संप्रदाय ने भी इस दिशा में पर्याप्त प्रयत्न किया। अहमदी संप्रदाय की लाहौरी शाखा के प्रधान मौलवी मुहम्मद अली एम० ए० ने कुरान का पहले अंग्रेजी में एक विस्तृत भाष्य लिखा। कुछ काल पश्चात् उर्दू में सुविस्तृत भाष्य प्रकाशित किया। अंग्रेजी में टिप्पणियों एवं भूमिका सहित एक अनुवाद भी प्रकाशित

किया। टिप्पणियों में यत्र तत्र उस अनुवाद का प्रयोग किया गया है। मौलवी मुहम्मद अली की तीनों पुस्तकें देखने से ज्ञात होता है कि उस पर सर सैयद अहमद खां का प्रभूत प्रभाव है। इसमें इस्लामी सिद्धान्तों का रूप ही बदल दिया गया है।

मौलाना अशरफअली थानवी मुसलमानों में लब्धप्रतिष्ठ विद्वान् हुए हैं। स्वामी जी की समीक्षा की सुखद छाया से उन्होंने भी पर्याप्त लाभ उठाया है। सर सैयद अहमद खां वा अहमदियों की भाँति 'उन्हें इस्लामी सिद्धान्तों में परिवर्त्तन करने का साहस नहीं हुआ, किन्तु अनुवाद में अनेक स्थानों पर हेर फेर उन्होंने किया है और वह भी स्वामी जी कृत समीक्षा को समक्ष रखकर तथा उसका निराकरण करने के लिये। मौलवी सना-उल्ला ने भी 'तफसीरे-सनायी' नामक विस्तृत कुरानभाष्य लिखा, उसका प्रयोजन भी स्वामी जी के आक्षेपों का खण्डन करना था। और भी अनेक भाष्य अनुवाद इस दृष्टि से लिखे गये। आर्यभाषा में भी कई अनुवाद हुए। हमीरपुर के पादरी अहमदशाह, इटावा के पं० रघुनन्दन शर्मा, कादियां के अहमदी तथा दिल्ली के ख्वाजा हसन निजामी के अनुवाद भाष्य हमने देखे हैं। श्री अहमदशाह के अनुवाद का उपयोग हमने नहीं किया, वह मुसलमान से ईसाई बने थे। पं० रघुनन्दन शर्मा के अनुवाद का भी उपयोग हमने नहीं किया। वह केवल अनुवाद ही है। ख्वाजा हसन निजामी के भाष्य में कुछ विशेषता नहीं। कादियानियों के 'कुरानशरीफ का हिन्दी अनुवाद' का उपयोग हमने टिप्पणियों में किया है। इसके अनुवाद कर्त्ता ने अनुवाद में पर्याप्त परिवर्त्तन किया है। परिवर्तन का लक्ष्य स्वामी जी द्वारा की गई समीक्षा का समाधान करने की चेष्टा ही है।

मुसलमानों में पाश्चात्य शिक्षा के पारंगत पर्याप्त संख्या में हैं। प्रचलित इस्लामी सिद्धान्तों को उस रूप में स्वीकार करने को उनका उत्साह नहीं होता। उनका सन्तोष-समाधान करने के लिये कुरानशरीफ की नयी व्याख्या की आवश्यकता को अनुभव करके उपर्युक्त प्रयत्न किये गये हैं।

बुद्धिमान् मुसलमान, जब तक कि अन्य अंग्रेजी अनुवाद न हो पाये, पढ़े लिखे मुसलमानों एवं अन्यों को मौलवी मुहम्मद अली अहमदी का कुरानभाष्य पढ़ने की प्रेरणा करते रहे। इससे उस भाष्य का महत्व समझ में आ सकता

है। जैसा हमने ऊपर लिखा है मौलवी मुहम्मद अली के कुरानभाष्य का बहुत गौरव है, अतः हम उसकी कुछ बातों की चर्चा यहां करना चाहते हैं। अंग्रेजी कुरानानुवाद की भूमिका के पृष्ठ १५ पर वह लिखते हैं :—"The holy book is prefaced with a short Mecca chapter which, in its seven short verses, contains the essence of the whole of the Quran, and teaches us a prayer which is admittedly the most beautiful of all prayers taught by any religion, and sets before us an ideal than which no higher ideal can be conceived." [इस पवित्र ग्रन्थ (कुरान) में एक छोटी मक्की सूरत भूमिका रूप में है जिसकी सात छोटी आयतों में कुरान का सार समाविष्ट है। वह हमें एक ऐसी प्रार्थना सिखाती है जो किसी भी मत की सिखायी सब प्रार्थनाओं से सचमुच अतीव सुन्दर है। और हमारे सामने एक ऐसा आदर्श प्रस्तुत करती है, जिसकी अपेक्षा अन्य किसी उच्च आदर्श की कल्पना नहीं की जा सकती]। प्रायः सभी मुसलमान इस सूरत को कुरान की जान मानते हैं। पाठकों को आश्चर्य होगा, कि यह सूरत यजुर्वेद ४०।१६ मन्त्र का प्रायः अक्षरशः अनुवाद और व्याख्या है। वह मन्त्र यह है :—

अग्ने नय सुपथा राये अस्मान् विश्वानि देव वयुनानि विद्वान्।
युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठान्ते नम उक्तिं विधेम॥

कुरानशरीफ की इस सूरते फातिहः में सात आयतें हैं, उसका अनुवाद इस प्रकार है:—"सब तरह की तारीफ (स्तुति) खुदा ही को है, बड़ा मेहरबान निहायत रहम वाला, इन्साफ के दिन का हाकिम, हम तेरी ही इबादत (पूजा) करते हैं और तुझ ही से दुआ मांगते हैं, हमको सीधे रास्ते चला, उन लोगों के रास्ते पर जिन पर तू अपना फजल व करम (दया तथा अनुग्रह) करता रहा, न उनके जिन पर गुस्से (क्रुद्ध) होता रहा और न गुमराहों के"।

मन्त्र का प्रथम चरण है:—"अग्ने नय सुपथा राये अस्मान्" [हे प्रकाशकों के प्रकाशक! हमें मुक्ति के लिये सीधे रास्ते से ले चल]। कुरानशरीफ में है:—"हमको सीधे रास्ते चला उन लोगों के रास्ते पर जिन पर तू अपना

फ़ज़ल करम करता रहा, न उनके जिन पर गुस्से होता रहा और न गुमराहों के।" वेद में 'सुपथा' [सीधे रास्ते से] है, कुरानशरीफ में भी 'सीधे रास्ते' है, 'उन लोगों के रास्ते पर'''और न गुमराहों के'। कुरान का 'सीधे रास्ते' वेद के "सुपथा" पद की व्याख्या है, अर्थात् 'हमको'''न गुमराहों के' कुरान की ये तीन आयतें वेद मन्त्रके "अग्ने'''अस्मान्"इस प्रथम चरण की व्याख्या हैं। मन्त्र में दूसरा चरण है:—"विश्वानि देव वयुनानि विद्वान्" [हे सर्वज्ञ ! तू हमारे विचारों और आचारों को जानता है]। कुरानशरीफ में आया है :—'इन्साफ़ के दिन का हाकिम'। भगवान् इन्साफ के दिन का तभी हाकिम बन सकता है, जब वह हमारे विचारों और आचारों को जानता हो। आगे चलकर हम दिखलायेंगे कि वर्तमान मुसलमान अब प्रतिक्षण खुदा का इन्साफ हो रहा मानते हैं। मन्त्र का तीसरा चरण है:—"युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनः" [हमसे टेढ़ी चालों वाले पाप को दूर कर]। कुरानमजीद में आया है:—'न उनके जिन पर गुस्से होता रहा और न गुमराहों के'। वेद में कुटिलता छुड़ाने के लिये प्रार्थना है, कुरान में बुरों के मार्ग से बचने की कामना है। भाव अभिन्न है, शब्द भिन्न हैं। वेद में आया है:— "भूयिष्ठां ते नम उक्ति विधेम" [तुझे बहुत बहुत नमस्कार वचन कहते है]। कुरान में इसके लिये है:—'सब तरह की तारीफ खुदा ही को है' और 'हम तेरी ही इबादत करते और तुझ ही से मदद माँगते हैं'। इन दोनों में कोई भेद नहीं है।

संक्षेप से हमने दर्शा दिया है कि कुरानशरीफ की यह सूरत फातिहः यजुर्वेद के चालीसवें अध्याय के सोलहवें मन्त्र का प्रायः शब्दानुवाद है।

मुसलमानों के मतानुसार ९६ वीं सूरत की पहली पांच आयतों का सबसे पहले इल्हाम हुआ। किन्तु कुरानशरीफ को क्रमबद्ध करते समय इस सूरते फातिहः का प्रथम स्थान विशेष महत्व रखता है। सभी प्रकार के मुसलमान इस सूरत को कुरान की जान अर्थात् "essence of the whole of Quran" [समस्त कुरान का सार] मानते हैं। मौलवी मुहम्मद अली का यह कहना, कि इस जैसी प्रार्थना अन्य किसी मत में नहीं सिखायी गई, अज्ञान का प्रदर्शन करना है। मौलवी मुहम्मद अली ने या तो वैदिकधर्म के किसी ग्रन्थ को पढ़ा ही नहीं अथवा जान बूझकर अशुद्ध बात लिख दी है। जो भी हो वेद

का जो भी समय हो, यह बात निर्विवाद है कि वेद कुरान से अत्यन्त पूर्व समय का है, अतः मानना चाहिये कि कुरान में यह सूरत वेद से आयी। स्वामी जी ने इसकी समीक्षा की है, वह इसके विनियोग (उपयोग) पर है। यदि उससे किये जाने वाले विनियोग को दूर किया जाये, तो उस पर कोई आक्षेप नहीं रहता। सचमुच यह बहुत सुन्दर प्रार्थना है और एक अत्यन्त उच्च आदर्श प्रस्तुत करती है। इसके उत्तम होने आदि का श्रेय सबसे पूव वेद को मिलना चाहिये।

इल्हाम

मनुष्य का इतिहास एवं प्रवृत्ति देखकर यह निश्चित होता है कि मनुष्य सिखाये विना कुछ नहीं सीख पाता। अतः सृष्टि के आरम्भ में मनुष्यों को भगवान् ने वाणी तथा ज्ञान प्रदान किये, क्योंकि उस समय और कोई शिक्षक था नहीं। भगवान् को वैदिक लोग किसी स्थान विशेष में सीमित नहीं मानते, प्रत्युत उसे सर्वव्यापक मानते हैं। सर्वव्यापक भगवान् मनुष्य के आत्मा में भी विद्यमान है। उस सर्वव्यापक ने पात्र आत्माओं को शब्दार्थसम्बन्ध सहित ज्ञान दिया। उस ज्ञान को वैदिक लोग 'वेद' कहते हैं। वे केवल शब्द मात्र को ही 'वेद' नहीं मानते, प्रत्युत उन शब्दों के अर्थ तथा शब्दार्थ सम्बन्ध सहित को 'वेद' मानते हैं।

आज के मुसलमानों को भी यह सिद्धान्त मानना पड़ गया है। सामान्य रूप से मुसलमान पांच प्रकार का इल्हाम मानते हैं। मौलवी मुहम्मद अली ने इस सम्बन्ध में लिखा है:—"Five kinds of revelations are referred to : revelation to inanimate objects, to animals lower than man, to man in general, to the prophets in particular and to angels." (भू० पृष्ठ XX) [पांच प्रकार के इल्हाम का निर्देश किया गया है :—(१) जड़ पदार्थों को, (२) मनुष्य से निचली श्रेणी के प्राणियों को, (३) सामान्यरूप से मनुष्यों को, (४) पैगम्बरों को विशेष रूप से और (५) फरिश्तों को]। इनको वही, वही मतलुब्ब, रोया, कश्फ, इल्हाम भी कहते हैं।

पैगम्बरों को जो इल्हाम होता है, उसे मुसलमान शब्दात्मक मानते हैं। तब अर्थ का ज्ञान कैसे हुआ ? इसका समाधान मौलवी मुहम्मद अली ने इन शब्दों में किया है :—"Sunnat, or Hadis, is therefore an explanation of the Quran given under divine inspiration."(भू० पृष्ठ XXV) [अतः 'सुन्नत' अथवा 'हदीस' परमात्मा की प्रेरणा के अनुसार, कुरान का एक व्याख्यान है]। मौलवी साहिब यह कहना चाहते हैं कि खुदा ने पैगम्बरों को जो जो शब्दात्मक ज्ञान दिया, पैगम्बरों ने उसके अनुसार आचरण किया, वह आचरण एक प्रकार से कुरान का व्याख्यान है। शब्दार्थ सम्बन्ध वाले वैदिक सिद्धान्त को मौलवी साहिब ने भूल-भुलैयां में उलझा दिया है।

मौलवी मुहम्मद अली इस बात को मानते हैं कि कुरान से अतिरिक्त उससे पूर्व होने वाले इंजील, जबूर, तौरेत, जेन्द, वेद आदि सब ईश्वरप्रदत्त इल्हाम हैं। इस पर सभी को शङ्का होती है कि यदि कुरान से पूर्व भी भगवान् ने भिन्न-भिन्न पैगम्बरों को इल्हाम दिया तो फिर कुरानदान की क्या आवश्यकता थी। इसके दो समाधान मौलवी मुहम्मद अली ने दिये हैं। एक तो यह कि उन इल्हामों में प्रक्षेप हो गया था (इसकी समीक्षा आगे की जायेगी), दूसरा कि:–"Revelation, according to the Holy Quran, is not only universal, but also progressive and it attains perfection in the final revelation." (भू० पृष्ठ XXXVIII) [पवित्र कुरान के अनुसार इल्हाम केवल सार्वभौम ही नहीं है, वरन् उन्नतिशील भी है और अन्तिम इल्हाम में पूर्णता प्राप्त करता है]। दूसरे शब्दों में मौलवी साहिब कुरान को इल्हामी सिद्ध करने के लिये 'Evolution' (विकासवाद) का सहारा लेते हैं। किन्तु एक बात वह भूल गये, कि विकासवाद के अनुसार मनुष्य की बौद्धिक आदि उन्नति अभी और होनी है। अतः आज से तेरह चौदह सौ वर्ष पूर्व हुआ ज्ञान पूर्ण कैसे कहा जा सकता है ? तात्पर्य यह कि विकासवाद को मानकर कुरानशरीफ को अन्तिम इल्हाम नहीं कहा जा सकता।

कुरान से पूर्ववर्त्ती इल्हामी ग्रन्थों के होते हुए कुरान के इल्हाम की आवश्यकता का हेतु मौलवी साहिब यह देते हैं कि अन्य इल्हामी ग्रन्थों में

पर्य्याप्त हेर-फेर हो गया था, अतः परमात्मा को अपना ज्ञान शुद्ध रूप में देने के लिये कुरान का इल्हाम देने की आवश्यकता पड़ी । इसके संबन्ध में हमारा निवेदन है कि आपका यह कथन मिथ्या है, 'वेद' को आप इल्हामी मानते हैं। 'वेद' का कट्टर विरोधी योरोपियन विद्वद्वर्ग इस बात को स्वीकार करता है कि तीन सहस्र वर्ष (योरोपियनों में अधिकतर वेदाभ्यासी विद्वान् वेद को तीन सहस्र वर्ष पुराना मानते हैं) से आज तक वेद में कोई परिवर्त्तन नहीं हुआ । इस अवस्था में कुरान के रूप में नये इल्हाम की आवश्यकता ही नहीं रहती । मौलवी मुहम्मद अली को वैदिकधर्म के संबन्ध में अधूरा ज्ञान भी तो नहीं है; होता तो वह यह कभी न लिखते कि:—"Judaism no doubt taught that 'Thou shalt have no gods before me' or that 'Thou shalt not make unto thee any graven image', but the Hindu scriptures do not contain even such an express injunction, while Christianity had little to add to the Jewish Doctrine". (भू० पृष्ठ XLII) । [यहूदियत ने निस्सन्देह यह सिखाया कि 'तू मेरे सामने किसी देवता को नहीं मानेगा' अथवा कि 'तू अपने लिये किसी मूर्ति को नहीं बनायेगा' । किन्तु हिन्दू धर्म्मग्रन्थों में तो ऐसा स्पष्ट आदेश भी नहीं है । ईसाइयत ने यहूदी सिद्धान्त में कुछ नहीं बढ़ाया] ।

ईसाई मौलवी साहिब से स्वयं निपट लेंगे, उन्होंने इस विषय पर अनेक ग्रन्थ लिखे हैं जिनमें कुरान के प्रमाण देकर सिद्ध करने की चेष्टा की गई है कि कुरान के प्रधान विषय बाईबल से लिये गये हैं। इस संबन्ध में हम मौलवी मुहम्मद अली को पादरी एस० एम० पाल का उर्दू में लिखा 'हमारा कुरान' नामक पुस्तक पढ़ने का परामर्श देंगे । इस विषय में मौलवी साहिब के मत की हम आगे चलकर आलोचना करेंगे । यहां हमें यह दिखाना है कि मौलवी मुहम्मद अली ने यहां भी मिथ्या ही लिखा है। 'वेद' आर्यों (हिन्दुओं) का मुख्य धर्मग्रन्थ है, इसे वे परमेश्वर का निःश्वसित (Inspired) मानते हैं। उसमें स्पष्ट आदेश है कि 'न तस्य प्रतिमा अस्ति' (यजु० ३२।३) [उस परमात्मा की कोई मूर्त्ति नहीं है]। इस स्पष्ट वैदिक आदेश के होते हुए यह कहना कि मूर्त्तिपूजा के विषय में हिन्दुओं के धर्म्मग्रन्थ में कोई आदेश नहीं है, कहां तक सत्य है, यह

पाठक स्वयं विचार सकते हैं। अतः मौलवी मुहम्मद अली का यह आरोप या अज्ञान जन्य है या द्वेषमूलक।

एकेश्वरवाद

मौलवी मुहम्मद अली यह मानते हैं कि :—"Every prophet taught the unity of God" (भू० पृष्ठ XLI) [प्रत्येक पैगम्बर ने परमात्मा के एकत्व की शिक्षा दी]। "But at the same time it tells us that the doctrine of unity was mixed with polytheism by all religions, and to this general corruption it refers to in 30, 41: 'Corruption had appeared in land and sea." (पृष्ठ XLI) [किन्तु साथ ही कुरान यह भी वतलाता है कि ईश्वर की एकता भू० सिद्धान्त बहुदेवतावाद के सिद्धान्त से मिश्रित था। इस सर्वसाधारण दोष की ओर कुरान ने ३०।४१ में निर्देश किया है कि 'स्थलजल में भ्रष्टता प्रकट हो चुकी थी']। मौलवी मुहम्मद अली ने जो यहां कुरान की एक आयत का अनुवाद दिया है, वह ठीक नहीं, किन्तु इस विषय में मुसलमान विद्वान् उन से सुलझें, हमें कुछ नहीं कहना, परन्तु मौलवी साहिब का यह कहना कि अन्य मतों में एकेश्वरवाद बहुदेववाद के साथ मिश्रित हो गया था, कोरी गप्प है। वेद में एकेश्वरवाद सम्बन्धी सैकड़ों मन्त्र हैं। हम उनमें से बहुत थोड़े से यहां प्रस्तुत करते हैं। इससे अधिक देखने की इच्छा वाले सज्जन हमारा लिखा 'वेदामृत' देखें। उससे अधिक के जिज्ञासुओं को स्वयं वेद देखना चाहिये।:—

"य एकश्चर्षणीनां वसूनामिरज्यति। इन्द्रः पञ्च क्षितीनाम्" (ऋ० १।७।९) [जो प्रभु अकेला ही पृथिवी, पांच प्रकार के प्राणियों एवं धनों का स्वामी है]।

"य एक इद्विद्यते वसु मर्ताय दाशुषे। ईशानो अप्रतिष्कुत इन्द्रो अङ्ग" (ऋ० १।८४।७) [जो सचमुच सर्वस्वामी, अद्वितीय शक्तिशाली, ईश्वर अकेला ही मरणधर्म्मा दाता को धन देता है]।

"भुवनस्य यस्पतिरेक एव नमस्यः" (अ० २।२।१)। [जो संसार का स्वामी है वही अकेला ही नमस्कार के योग्य है]।

"समेत विश्वे वचसा पतिं दिव एको विभूरतिथिर्जनानाम्" (अ० ७।२१।१) [सब लोग मिल कर प्रकाश के स्वामी के पास वाणी से जायें। वही एक सर्वव्यापक स्वामी है]।

इस प्रसंग में अथर्ववेद के (१३।४।२) के १६ से १८ तक के मंत्र अत्यन्त मनन करने योग्य हैं:—

"न द्वितीयो न तृतीयश्चतुर्थो नाप्युच्यते। न पंचमो न षष्ठः सप्तमो नाप्युच्यते। नाष्टमो न नवमो दशमो नाप्युच्यते। य एतं देवमेकवृतं वेद" [उसे न दूसरा, न तीसरा और न चौथा कह सकते। न पांचवा, न छठा और न सातवां कह सकते हैं; न आठवां, न नौवां और न ही दसवां कह सकते हैं। जो उसको एक (अद्वितीय) और एकवृत (अकेला) ही जगत्सृष्टि आदि का व्यवहार करने वाला मानता है, वही उसे जानता है]।

हम ललकार कर कह सकते हैं कि एकेश्वरवाद का इतना स्पष्ट और प्रांजल वर्णन वैदिक धर्म से अन्यत्र मिलना लगभग असंभव है। इतना स्पष्ट एकेश्वरवाद का वर्णन वेद में होते हुए मौलवी मुहम्मद अली का यह कहना कि कुरान के अतिरिक्त अन्य धर्मग्रन्थों में एकेश्वरवाद बहुदेववाद से मिश्रित हो गया था, अन्याय के अतिरिक्त और कुछ नहीं है।

यदि कहा जाये कि भले ही उनके धर्मग्रन्थों में विशुद्ध एकेश्वरवाद का निरूपण हो, किन्तु उनके दैनिक आचरण में बहुदेववाद ओत-प्रोत है, अत एव इसके निराकरण करने के लिये कुरान का अवतरण हुआ, तो यह उचित नहीं है। कुरान के अनुयायी किस वस्तु का पूजन नहीं करते जिस का हिन्दू करते हैं। कब्र, वृक्ष, पीर आदि जड़ चेतन सभी वस्तुओं की आराधना मुसलमान करते हैं। मुसलमानों के प्रसिद्ध जातीय कवि मौलाना अल्ताफ़ हुसैन हाली ने अपनी मुसद्दस में लिखा है:—

"करें गैर गर बुत की पूजा तो काफिर, जो ठहराये बेटा ख़ुदा का तो काफिर।
झुके आग पर बहरे सिज्दा तो काफिर, कवाकब में माने करश्मा तो काफिर।

मगर मोमिनों पर कुशादह हैं राहें, परिस्तिश करें शौक से जिस की चाहें।
नवी को जो चाहें खुदा कर दिखायें, इमामों का रुत्वा नबी से बढ़ायें॥
मजारों पै दिन रात नजरें चढ़ायें, शहीदों से जा जाके मांगें दुआएं।
न तौहीद में कुछ खलल इस से आये, न इस्लाम विगड़े न ईमान जाये"॥

इसी विषय पर मौलाना अशरफ अली ने अपने कुरानभाष्य के पृष्ठ ४६० की टिप्पणी में लिखा है :—"इस जमाने के मुशरिकों का तो यह हाल है कि ये हर हालत में सखती हो या नेऽमत औरों को पुकारते हैं। कोई 'शेख अब्दुल्कादिर' को पुकारता है कोई 'शाह अब्दुल्हक्क' को। फिर वावजूद इस शिर्क के अपने आपको मुसलमान का मुमलमान कहलवाते हैं,।

जव मुसलमानों में इस प्रकार एकेश्वरपूजन के स्थान में जड़पूजन का चलन हो रहा है तो खुदा को फिर नये सिरे से इल्हाम देना चाहिये। किन्तु दे नहीं रहा।

निस्संदेह कुरान एकेश्वरवाद का प्रवल समर्थक है, किन्तु मुहम्मद साहिब को बार बार परमेश्वर का रसूल कह कर और अपने जयवाक्य (कलमा) में मुहम्मद साहिब को सम्मिलित करके मुसलमानों ने उसे विशुद्ध नहीं रहने दिया। विशुद्ध, अमिश्रित एकेश्वरवाद देखना हो तो 'वेद' में देखिये। वहां किसी मनुष्य को जयमन्त्र में परमेश्वर के साथ नहीं मिलाया गया। स्वामी दयानन्द ने इस विषय में इसलामी मत पर आक्षेप किया है, उसका परिहार आज तक किसी से नहीं हो पाया।

मूर्तिपूजा

मुसलमानों का यह अभिमान, आपाततः, उचित ही प्रतीत होता है कि वे परमात्मा की कोई मूर्ति नहीं वनाते और न पूजते हैं। परन्तु तनिक सा विचार करने से उनका यह अभिमान भी निराधार हो जाता है। मक्कास्थ 'काबा' का परिक्रमण करना, काबास्थ, 'हिज्रे अस्वद' (अश्वेत पत्थर) को चूमना, लात-मनात पर कंकर मारना, कब्रों के आगे माथा झुकाना, एक विशेष दिशा में मुख करके नमाज पढ़ना आदि उन के गर्व को खर्व कर रहे हैं। स्वामी जी इन बातों के कारण मुसलमानों को मूर्त्तिभंजक न मान कर मूर्त्तिपूजक कहते हैं।

स्वर्ग नरक

इस्लामी मत के अनुसार स्वर्ग एक स्थानविशेष है, और वैसे ही नरक भी एक विशिष्ट स्थान है। मौलवी मुहम्मद अली सर सैय्यद अहमद खां के अनुकरण में इनकी दो अवस्थायें मानते हैं :—"This shows clearly that paradise and hell are more like two conditions than two places." (भू० पृष्ठ LXIII) [यह स्पष्टतया दर्शा रहा है कि स्वर्ग तथा नरक दो स्थानों की अपेक्षा दो स्थितियां हैं]। इसके आगे चल कर अपने पक्ष की पुष्टि में कुरान के कुछ प्रमाण देकर मौलवी साहिब लिखते हैं :—"This shows that hell is a condition which shall be perceived only by those in it and similar is the case with paradise." (भू०पृष्ठ LXIII-IV) [यह दर्शाता है कि नरक एक अवस्था है जिसका केवल उस अवस्था वालों को अनुभव होगा और यही दशा स्वर्ग की है]। ठीक इसके आगे मौलवी मुहम्मद अली लिखते हैं :—"But as I have already pointed out, the Holy Quran says that paradise and hell begin in this very life."(भू०पृष्ठ LXIV)[जैसाकि मैं पहले बतला चुका हूं कि कुरानशरीफ कहता है कि स्वर्ग और नरक इसी जीवन में आरम्भ होते हैं]। इसके आगे वह पुनः लिखते हैं :—"That the soul that has found rest in God is admitted to Paradise in this life" (भू० पृष्ठ LXIV) [कि वह आत्मा जिसने परमात्मा में शांति प्राप्त कर ली है, इस जीवन में स्वर्ग में प्रवेश पाता है]। पुनः भू० पृष्ठ LXV पर उन्होंने लिखा है:—"They enter into paradise in this very life" [वे इस ही जीवन में स्वर्ग में प्रविष्ट होते हैं]। अपने पक्ष की पुष्टि में कुरान के वचन देकर मौलवी साहिब लिखते हैं :—"This shows that not only does paradise admit the righteous to high places, but it is in fact the starting point for a new advancement, there being higher and higher places still and it is in accordance with this that they are spoken of as having an unceas-

ing desire for attaining to higher and higher excellences" (भू०पृष्ठ LXVI) [यह दर्शाता है कि स्वर्ग उत्तम कर्म करने वालों को न केवल उच्च-स्थानों में प्रवेश कराता है किन्तु वास्तव में यह नई उन्नति का आरम्भ विन्दु है, क्योंकि अभी इससे भी अधिक उच्चतर स्थान हैं और इसके अनुसार ही यह कहा जाता है कि उनमें अधिक उन्नततर उत्कर्षों को प्राप्त करने की समाप्त न होने वाली इच्छा रहती है]।

स्वामी जी की समीक्षा को समक्ष रख कर मौलवी मुहम्मद अली अपने सिद्धान्त में सुधार करके भी दूसरे मतों पर डंक मारने से नहीं चूके। वह लिखते हैं :—"This idea of ceaseless advancement in paradise is one which is peculiar to the Holi Quran and not the least trace of it is to be met within any other scripture." (भू० पृष्ठ LXVI) [स्वर्ग में इस समाप्त न होने वाली उन्नति का विचार कुरानशरीफ की अपनी विशेषता है, इसका थोड़ा सा भी चिन्ह किसी दूसरे धर्म्मग्रन्थ में नहीं मिलता]। मौलवी मुहम्मद अली की यह गर्वोक्ति मिथ्योक्ति है, स्वर्ग नरक की अपनी इस व्याख्या को पहले दूसरे मुसलमान विद्वानों से मनवालें और फिर किसी अन्य मत के मुंह आवें। किन्तु यदि कुरान ऐसा ही मानता है तो कुरान का यह विचार न निराला हैं और न उसका अपना है। वेद में कहा है :—"आरोहणमाक्रमणं जीवतो जीवतोऽयनम्" (अ० ५।३०।७) [ऊपर उठना, आगे बढ़ना प्रत्येक जीव का लक्ष्य है]। कहिये ! लगातार आगे बढ़ने, उन्नति करने, ऊपर उठने उन्नत होने की भावना सबसे पूर्व वेद ने दी, वेद से दूसरे ग्रन्थों ने ली। स्वर्ग नरक की जो व्याख्या आप करते हैं। ईसाई भी वैसी करने लग गये हैं। अतः आपका विकत्थन व्यर्थ है।

नरक के संबन्ध में मौलवी साहिब ने लिखा है:—"...is the idea of hell where punishment is not meant for torture but for purification, in order to make a man fit for spiritual advancement." (भू० पृष्ठ LXVI) [नरक का विचार भी वैसा है जहाँ दण्ड दुःख देने के लिये नहीं दिया जाता किन्तु शोधन के लिये, जिससे मनुष्य को आत्मिक उन्नति के योग्य बनाया जा सके]। अर्थात् नरक में सदा न रहना

होगा। स्पष्ट ही मौलवी मुहम्मद अली का यह कथन कुरान के सर्वसम्मत मत के नितान्त विरुद्ध है। मौलवी मुहम्मद अली अपने इस मत का पुनः इन शब्दों में निरूपण करते हैं :—"It is for this reason that the Holy Quran makes a difference between the abiding in Paradise and the abiding in Hell, allowing a termination in the latter case but not in the former." (भू० पृष्ठ LXVI) [इसी कारण से कुरानशरीफ स्वर्गवास तथा नरकवास में भेद करता है। नरकवास की समाप्ति की अनुमति नहीं देता]। मौलवी मुहम्मद अली ने लिखने को यह लिख तो दिया, किन्तु मन ही मन वह शंकित हैं कि उन्होंने यह वात कुरान के मन्तव्य के विरुद्ध लिखी है, अतः उन्हें लिखना पड़ा है :—"It is true that the word '*abad*' is thrice used in the Holy Quran in connection with the abiding in Hell (4/169; 33/65; 72/23) but '*abad*' indicates eternity and as well as long time." (भू० पृष्ठ LXVII) [यह सत्य है कि कुरानशरीफ में नरक वास के सम्वंध में 'अवद' शब्द तीन वार (सूरत ४ आयत १६६, सूरत ३३ आयत ६५ तथा सूरत ७२ आयत २३ में) आया है, किन्तु 'अवद' शब्द नित्यता तथा दीर्घकाल को भी द्योतित करता है]। 'अवद' शब्द का अर्थ मौलवी मुहम्मद अली ने विना प्रमाण के दीर्घकाल किया है, यदि उनके पास इसका कोई प्रमाण होता, तो वह दिये विना न चूकते। किन्तु वादितोपन्याय से मान लिया जाये कि 'अबद' शब्द का अर्थ दीर्घकाल भी है तो फिर प्रश्न होता है कि कहां इसका अर्थ 'नित्यता' किया जाये और कहां 'दीर्घकाल', और कि उसके लिये नियामक व्यवस्था क्या है? साथ ही इसके हमारे जैसा कोई यह कह दे कि स्वर्ग के विषय में आये हुए 'अवद' शब्द का भी यही यानी 'दीर्घकाल', अर्थ है, तो आपको जैसे आपने 'नरक से लौटना या निकलना' माना है, वैसे स्वर्ग से निकलना भी मानना पड़ेगा। और आपके यहां यह कोई अनहोनी या अपूर्व बात न होगी, क्योंकि आपके हजरत आदम भी तो स्वर्ग से निकाले गये थे।

अस्तु, यह तो प्रसङ्गानुप्रसक्त बात थी। प्रकृत तो यह है कि मौलवी

मुहम्मद अली ने स्वर्ग नरक का जो रूप बनाने का यत्न किया है; वह लगभग वही है, जो ऋषि दयानन्द ने बताया है। स्वमन्तव्यामन्तव्यप्रकाश में स्वर्ग और नरक के लक्षण उन्होंने यों लिखें हैं :—

"४२. 'स्वर्ग' नाम सुखविशेषभोग और उसकी सामग्री की प्राप्ति का है"।

"४३ 'नरक' जो दु:खविशेषभोग तथा उसकी सामग्री का प्राप्त होना है"।

इससे स्पष्ट है कि दयानन्द के सुधार की धारा निरन्तर अपना कार्य कर रही है।

कुरानशरीफ में नरक के लिये 'जहुन्नम्', 'जहीम्', 'सईर,' 'सकर,' 'हुतमह,' 'लजमा' तथा 'हावियह' शब्दों का प्रयोग है। जब नरक को स्थान विशेष न माना तो इनकी भी दूसरी व्याख्या होनी चाहिये। अतः मौलवी मुहम्मद अली ने लिखा है:—"Hell is described by seven different names in the Holy Quran and these are supposed by some to be the seven divisions of hell." (भू० पृष्ठ LXIX) [कुरानशरीफ़ में नरक के सात विभिन्न नाम हैं, और कईयों के अनुसार नरक के यह सात विभाग हैं]। किन के अनुसार मौलवी साहिब ?

मौलवी मुहम्मद अली कुकर्मियों के दण्ड को नार (अग्नि) बता कर लिखते हैं :—"In other words the spiritual torments and mental pangs that are often felt by an evildoer in this very life assume a pulpable shape in the life after death." (भू० पृष्ठ LXIX) [दूसरे शब्दों में आत्मिक क्लेश तथा मानसिक वेदनायें जो कि एक कुकर्मी इस ही जीवन में अनुभव करता है, मरणोत्तर जीवन में मानसिक रूप धारण कर लेते हैं]। स्वामी दयानन्द नरक को "दु:खविशेषभोग तथा उसकी सामग्री का प्राप्त होना मानते हैं"। मौलवी मुहम्मद अली ने उसे दु:खों का मानसिक रूप निरूपण किया है। शब्दों का भेद अवश्य है, अर्थ का तनिक सा भी भेद नहीं। मौलवी मुहम्मद अली ने इस विषय को भू० पृष्ठ LV पर बहुत स्पष्ट किया है :—"Heaven and

Hell are not places of enjoyment and torture to be met with only after death, they are realities even here." [स्वर्ग तथा नरक मृत्यु के पश्चात् सुख अथवा दुःख भोगने के स्थान नहीं हैं, वे तो यहां की वास्तविकताएं हैं] । श्री नूरुद्दीन कारी काश्मीरी इस विषय में लिखते हैं :—'मुसलमानों का वहिश्त दर हकीकत सिरफ जिस्मानी वहिश्त नहीं बल्कि दीदारे इलाही का घर है और जहुन्नम् इन्सान अपने हाथ से पैदा करता है······यानी बदी के आमाल दोजख की सूरत में जाहिर हो जायेंगे'।

आदम

साधारणतया मुसलमानों में यही प्रचलित था कि अल्लाह ने आरंभ में (आज से लगभग पांच छह सहस्र वर्ष पूर्व) मिट्टी से आदम को उत्पन्न किया और उसकी पसली से हव्वा की रचना की। स्वामी दयानन्द ने इस मत पर आक्षेप किया है। उस आक्षेप का वारण करने के लिये आदम विषयक कथानक में आमूलचूल परिवर्तन कर दिया गया है।

कुरानशरीफ (४।१) में लिखा है :—"ऐ लोगो डरो परवरदिगार अपने से जिसने पैदा किया तुमको जान एक से और पैदा किया उससे जोड़ा उसका और फ़ैलाये उन दोनों से मर्द बहुत और औरतें"। यह शाह रफीउद्दीन का अनुवाद है। मौलाना अशरफ अली ने ठेठ उर्दू में यहां इस प्रकार लिखा है:—"ऐ लोगो! अपने परवरदिगार से डरो, जिसने तुम को एक जान से पैदा किया। और उस जानदार से उसका जोड़ा पैदा किया। उन दोनों से बहुत से मर्द और औरतें फैलायीं"। मौलाना अशरफअली ने इस पर एक छोटी सी टिप्पणी भी दी है:—"यानी एक आदम से हव्वा बनायी फिर उनसे सारे लोग'। मौलवी सना-उल्ला ने इसका अनुवाद इस प्रकार किया है :—'लोगो! अपने पालनहारे से डरते रहो जिसने तुमको एक जान से पैदा किया फिर उससे उसका जोड़ा यानी बीवी पैदा की और फिर उन दोनों से बहुत से मर्द और औरतें फैलाये'। मौलवी सना-उल्ला ने स्पष्ट कर दिया कि अल्ला ने हव्वा की उत्पत्ति आदम से की। मौलवी मुहम्मद अली इस सम्बन्ध में लिखते हैं :— "It is no doubt stated in the Holy book that 'God created people

from a single being and created its mate of the same', (4/1) but the meaning is evidently of the same kind or same essence."(भू० पृष्ठ LXXVI) [निस्सन्देह कुरानपाक में इसका वर्णन है कि 'अल्ला ने एक ही प्राणी से लोगों को उत्पन्न किया और उसी से उसके जोड़े को' (४।१), किन्तु अर्थ तो स्पष्टतया 'उसी जाति' अथवा 'उसी तत्व' से ऐसा है]। मौलवी मुहम्मद अली ने बहुत सुन्दर व्याख्या कर दी, किन्तु एक आक्षेप तो बना रहा कि हव्वा अथवा स्त्रीमात्र को तो आदम से उत्पन्न किया, उसे टालने के लिये 'उसी तत्त्व से' का विकल्प रखा गया है।

मौलवी मुहम्मद अली ने आदम की पसली से हव्वा की उत्पत्ति के निषेध प्रसङ्ग में उक्त शब्द लिखे हैं। इसके आगे उनके ये शब्द ध्यान देने योग्य हैं :—"For elsewhere we are told that mates or wives are created for all men from themselves—Anu-fus—meaning selves or kind." (भू०पृष्ठ LXXVI)[क्योंकि दूसरे स्थान में हमें कहा गया है कि सब मनुष्यों के लिये जोड़े वा बीबियाँ उनसे ही उत्पन्न किये। अरबी में 'अनुफुस' शब्द है जिसका अर्थ है स्वयं वा जाति]। अर्थात् सर्ग के आरम्भ में अनेक आदम थे, एक नहीं। इस सम्बंध में मौलवी मुहम्मद अली लिखते हैं :—The Holy Quran does not state when Adam was born or how he was born; it does not even state that he was the first man. The great muslim divine, Muhammed bin Ali Al Baqir, one of the twelve Sia Imams, is reported to have said that millions of Adams passed away before our father Adam, and Ibn-i-Arabi, the head of the sufies' wrote in his great work, the 'Fatuhat' that forty thousand years before our Adam there was another Adam. There is also a report accepted by the Imamiyyah according to which there were thirty Adams before our Adam, and this earth remained a waste after them for fifty

thousand years, then it was inhabited for fifty thousand years, then was Adam created" (भू०पृष्ठ LXXV)[पवित्र कुरान यह नहीं बताता कि आदम कब उत्पन्न हुआ और कैसे उत्पन्न किया गया। इसमें तो यह भी वर्णन नहीं है कि वह प्रथम मनुष्य था। महान् मुस्लिम धर्मशास्त्री मुहम्मद बिन अली-अल-बाकिर, जो शियों के बारह इमामों में से एक है, के संबंध में कहा जाता है कि उसने कहा:—"हमारे अब्बा आदम से पूर्व लाखों आदम बीत चुके हैं"। और सूफियों के प्रधान, इब्न-ए-अरबी अपने महान् ग्रन्थ 'फतूहात्' में लिखते हैं कि 'हमारे आदम से चालीस सहस्र वर्ष पूर्व एक और आदम था'। इसी प्रकार एक और हदीस है जिसे इमामिय्यह (शियासंप्रदाय) स्वीकार करता है, उसके अनुसार हमारे आदम से पूर्व तीस आदम हो चुके थे, और उनके पश्चात् पच्चास हजार वर्षों तक यह भूमि उजड़ी पड़ी रही और फिर यह पच्चास सहस्र वर्षों के लिये बसाई गई और उसके पश्चात् आदम उत्पन्न किया गया]।

स्वामी जी का आक्षेप है कि यदि आज से छह सात सहस्र वर्ष पूर्व आदम का सिरजन किया गया, तो क्या उससे पूर्व खुदा निठल्ला बैठा रहा और आदम से पूर्व अनादिकाल से उसकी सिरजनशक्ति व्यर्थ रही। दूसरा यह कि सृष्टि के आरम्भ में एक आदम का होना संगत नहीं और कि हव्वा का आदम से उत्पन्न होना विज्ञान विरुद्ध है। इन आक्षेपों की सत्यता स्वीकार करके ही मौलवी मुहम्मद अली ने इन तीनों बातों में सर्वथा परिवर्तन कर दिया है। एक आदम के स्थान में लाखों आदमों का प्रतिपादन, आदम वा आदमों की उत्पत्ति को लाखों वर्षों पूर्व ले जाना, तथा हव्वा की उत्पत्ति आदम से न मानकर उस तत्त्व से मानना जिससे आदम का निर्माण हुआ था, इस्लामी सिद्धान्तों का उत्तम परिष्कार है। मौलवी मुहम्मद अली अपने इस व्याख्यान के लिये सुन्नियों के किसी ग्रन्थ का प्रमाण नहीं दे सके। शियों के भी ग्रन्थों का अतापता नहीं बता पाये। इससे यह पता चलता है कि उन द्वारा की गई व्याख्या उनकी अपनी कल्पना है। यदि मुसलमान इस परिष्कार को स्वीकार करलें तो वैदिक धर्म तथा इस्लाम में मतभेद बहुत थोड़ा रह जाता है।

आदम की उत्पत्ति धूली से, मिट्टी से कही जाती है। स्वामी जी को

उस पर आपत्ति है। उसका निराकरण करने के लिये मौलवी मुहम्मद अली ने लिखा है :—"Again, the Holy Quran does not say how Adam was made. It does not accept the Bible theory of his formation. It does say indeed, that he was made from dust, but then it speaks of every son of man being created from dust as well" (भू॰ पृष्ठ LXXV) [पुनश्च, आदम कैसे बनाया गया। इस विषय में कुरानपाक कुछ नहीं कहता। और न ही यह उसके निर्माण विषयक बाईबल की कथा को स्वीकार करता है। सचमुच, यह तो यह कहता है कि वह धूलि से बनाया गया, किन्तु यह फिर प्रत्येक मानवपुत्र को मिट्टी से उत्पन्न किया हुआ मानता है]।

धूली वा मिट्टी का तात्पर्य भी मौलवी मुहम्मद अली ने कुछ अन्य कर दिया है:—"The man's creation from dust means his creation from an extract of dust, an extract which eventually appears as a life-germ." (भू॰ पृष्ठ LXXVI) [मिट्टी से मनुष्य की उत्पत्ति का अर्थ है मिट्टी के सार से उसकी उत्पत्ति, ऐसा सार जो वास्तव में जीवन बीज प्रतीत होता है]।

मौलवी मुहम्मद अली का यह कहना कि कुरानशरीफ बाईबलोक्त आदम-उत्पत्ति के प्रकार को स्वीकार नहीं करता, नितान्त अशुद्ध है, क्योंकि कुरानशरीफ का एक साधारण नियम है कि जहां कहीं किसी प्रवाद से उसे मत-भेद होता है, वहां उसका तीव्र खण्डन करता है, यथा ईसा की खुदाई का। किन्तु समस्त कुरान में कहीं भी बाईबलोक्त आदमोत्पत्तिप्रकार का खण्डन नहीं है। अतः 'परमतमप्रतिषिद्धमनुमतं भवति' [दूसरे का खण्डन न किया हुआ मत स्वीकृत होता है] इस तंत्रयुक्ति के अनुसार कुरानशरीफ को बाईबल का यह मत स्वीकार है। कुरान में कहीं भी इस प्रकार का खण्डन होता तो अवश्य मौलवी मुहम्मद अली उस प्रमाण को प्रस्तुत करते।

जैसी व्याख्या मौलवी साहिब ने की है, उसके अनुसार उन्हें लिखना पड़ा कि : "and hence story of Adam is really the story of every man." (भू॰ पृष्ठ LXXVII) [अतः आदम की कहानी वास्तव

में प्रत्येक मनुष्य की कहानी है]।

पीछे हम दे आये हैं कि मौलवी मुहम्मद अली ने मनुष्य की उत्पत्ति मिट्टी के सार से मानी है। इस विषय में वह अकेले नहीं हैं। तफसीर-उल्कुरान-बिल्कुरान [कुरान के अनुसार कुरानभाष्य] के लेखक मौलवी अब्दुल् हकीम और मौलाना अशरफ अली भी उनके साथ हैं—दोनों ने मनुष्य की उत्पत्ति 'मिट्टी के खुलासा से' मानी है। इस अर्थ के लिये इन्होंने कोई प्रमाण नहीं दिया। शाह जी ने इस आयत (२३।१२) का अनुवाद इस प्रकार किया है :—"और तहकीक पैदा किया हमने आदमी को सनी हुई यानी बजती मिट्टी से"। मूल में 'सुलालत' शब्द है। मौलाना अशरफ अली मौलवी मुहम्मद अली तथा मौलवी अब्दुल हकीम तीनों के तीनों स्वामी दयानन्द के पश्चात् हुए। अतः उनके सामने 'सत्यार्थप्रकाश' था। तीनों ने, आक्षेप का निराकरण करने के लिये अर्थ में परिवर्तन किया। शाहजी स्वामी जी से पूर्ववर्ती हैं। स्वामी जी ने शाहजी के अनुवाद को आधार बनाया। आक्षेप को हटाने के लिये शाहजी के अनुवाद का भी एक प्रकार से इन तीनों को खण्डन करना पड़ा। मौ० सना-उल्ला ने इसका अनुवाद यों लिखा है:—'हमने इन्सान को साफ मिट्टी से बनाया'। अपने भाष्य में वह लिखते हैं :—'हालांकि हमने इन्सान को यानी उसके बाप आदम को साफ मिट्टी से बनाया ?' मौलवी सना-उल्ला ने भी अपने अर्थ के लिये कोई प्रमाण नहीं दिया। निस्सन्देह शाहजी ने कुरान शरीफ (२३।८) के अनुवाद में 'सुलालत' शब्द का अनुवाद 'खुलासा' किया है।

इस तरह 'सुलालत' शब्द के तीन अर्थ हमारे सामने आते हैं:—१. सनी हुई यानी बजती हुई मिट्टी ; २. खुलासा तथा ३. साफ। प्रकृत में किस आधार पर कौन सा अर्थ स्वीकार किया जाये, इसकी कोई व्यवस्था नहीं दीख रही। मौलाना अशरफ अली ने इस पर टिप्पणी में लिखा है :—"आं हजरत ने फरमाया है कि खुदा ने 'आदम' के पुतले को रूए जमीन की मिट्टी के खुलासा (जौहर) से बनाया जिसमें नरम, सख्त, बुरी, अच्छी, हर किस्म की मिट्टी शामिल थी फिर उसमें रूह डाल दी फिर जन्नत में दाखिल होने से पहले 'हव्वा' को 'आदम' की बाईं पसली से पैदा किया"। मौलवी मुहम्मद अली आदम की

तथा 'हव्वा' की इस प्रकारकी उत्पत्ति स्वीकार नहीं करते, किन्तु मौलाना अशरफ अली आदि इसे मानते हैं और दृढ़ता से मानते हैं।

अन्त में हम यह कह देना चाहते हैं कि मूल कुरान मोलवी मुहम्मद अली का समर्थन करता हुआ प्रतीत नहीं होता। कुरानशरीफ (१५।२६,२७)में आदम की उत्पत्ति का जो वर्णन है, शाहजी ने उसका अनुवाद इस प्रकार किया है :— "और अलवत्ता तहकीक पैदा किया हमने आदमी को बजने वाली मिट्टी जो बनी हुइ कीचड़ सड़ी हुई से। और जब कहा परवरदिगार तेरे ने वास्ते फरिश्तों के, तहकीक मैं पैदा करने वाला हूँ आदमी को बजने वाली मिट्टी से जो बनी थी कीचड़ सड़ी हुई से"। 'मुवाजह-उल-कुरान' में इस पर टिप्पणी में लिखा है :—"मिट्टी पानी में तर की और उसमें खमीर उठा कि खन-खन बोलने लगी, वह बदन हुआ इन्सान का उसकी खासियत उसमें रह गई सखती और बोझ"। मौलाना अशरफ अली ने इनका अनुवाद यह किया है:—"और हमने इन्सान को बजती हुई मिट्टी से जो कि सड़े हुए गारे की बनी थी पैदा किया। और वह वक्त याद करने के काविल है जब आपके रब्ब ने मलायका से फरमाया कि मैं एक बशर को बजती हुई मिट्टी से जो सड़े हुए गारे की बनी होगी पैदा करने वाला हूँ"। इस अनुवाद में 'वह वक्त याद करने के काविल है' वाक्यांश अनुवादक ने अपनी ओर से लिखा है। मूल में इसके लिये कोई शब्द नहीं है। मौलवी सना-उल्ला, इसका अनुवाद यह करते हैं :—"और हम ही ने इन्सान को सड़ी कीचड़ की खनखनाटी मिट्टी से पैदा किया। और जब तेरे रब्ब ने फरिश्तों से कहा कि मैं एक आदमी को सड़ी मिट्टी से पैदा करने को हूँ"। भाष्य में उन्होंने लिखा है कि:—"और सुनो! हम(खुदा)ही ने इन्सान को यानी आदम को सड़े हुए कीचड़ की खनखनाटी मिट्टी से पैदा किया"। स्पष्ट ही इन अनुवादों में मनुष्य की उत्पत्ति मिट्टी के खुलासे या सार से नहीं अपितु सड़े हुए कीचड़ की शब्द करती हुई मिट्टी से वर्णित हुई है। कुरानशरीफ ५५।१४ में पुनः कहा है :—"पैदा किया आदमी को बजने वाली मिट्टीसे मानिन्द ठीकरी की"। शाहजी-मौलाना अशरफ अली तथा मौलवी अब्दुल हकीम के अनुवाद भी ऐसे ही हैं। मौलवी मुहम्मद अली ने दोनों स्थानों में 'fashioned in shape' (आकार में ढाले) ये शब्द अपनी ओर से जोड़े हैं। मौलवी मुहम्मद अली ने टिप्पणी में लिखा है :—

"This is a reference to the origion of life." [यह जीवन के आरम्भ की ओर संकेत है]। यह कथन अशुद्ध है, स्पष्ट ही यहाँ मनुष्य की उत्पत्ति का वर्णन है, जीवन के आरम्भ का नहीं'। इसके आगे विकासवाद के अनुरूप सृष्टि-उत्पत्ति का निरूपण करके वह लिखते हैं:—"But it may be added that the description of *men and jinns* from *dust* and *fire* respectively is also a allegorical description of the nature of those who are submissive to Divine laws and those who rebel against them and the allegory is further carried on further in what is stated of the rebellion of the devil against Adam." [किन्तु इसके साथ यह अवश्य जोड़ना चाहिये कि मनुष्यों तथा जिन्नों की क्रमशः मिट्टी तथा आग से उत्पत्ति का वर्णन वास्तव में उनका आलंकारिक वर्णन है जो दैवी नियमों को पालन करते हैं और उनका जो उनके विरुद्ध विद्रोह करते हैं। और यह अलंकार वहां तक आगे ले जाया गया है जहां आदम के विरुद्ध शैतान के विद्रोह की चर्चा है]।

छुट्टी हुई। 'जिन्न' तथा 'शैतान' सब का वर्णन आलंकारिक हो गया। वास्तविकता न रही।

फरिश्ते तथा शैतान

शैतान जिन्नों में से माना जाता है, उसकी उत्पत्ति कुरान में आग से बतायी गई है। ऊपर हमने दिखा दिया है कि जिन्नों की उत्पत्ति को मौलवी मुहम्मद अली आलंकारिक मानते हैं, अर्थात् जिन्नों के साथ शैतान भी आलंकारिक हो गया। न रहा बांस, न बजेगी बांसुरी। जिन्नों तथा फरिश्तों को अदृश्य निरूपण करके मौलवी मुहम्मद अली लिखते हैं:—"These invisible beings are connected with the spiritual life of man, the angel urging him to good and the devil stirring up the baser passions in him and thus retarding his advancement to the higher life; see 50 : 21, where the impeller to evil

or the devil is called a driver and the caller to good or the angel is called a witness......and that to attain to a higher life it is necessary that the devil should be made to submit or the baser passions in man must be subdued. (भू० पृष्ठ LXXVIII)" [इन अदृश्य तत्वों का मनुष्य के आध्यात्मिक जीवन से संबन्ध है। फरिश्ता उसे भलाई के लिये अनुरोध करने वाला और शैतान मनुष्य के नीच भावों को उत्तेजित करने वाला और हर प्रकार उन्नत जीवन की ओर उसके उत्थान को रोकने वाला है। देखो ५०।२१ जहां बुराई के प्रेरक वा शैतान को 'सारथी' और भलाई की ओर बुलाने वाले वा फरिश्ता को 'साक्षी' कहा गया है······और कि उन्नत जीवन की प्राप्ति के लिये यह आवश्यक है कि शैतान को आधीन किया जाये अर्थात् मनुष्य में की क्षुद्र भावनाओं को दबाया जाये]।

सर सैयद अहमद खां का अनुकरण तो इन्होंने किया है किन्तु उनकी भांति इननें साहस नहीं है। सर सैयद फरिश्तों और शैतान को मन की भली बुरी कैफियत ही कहते हैं। मौलवी मुहम्मद अली भी बात तो वैसी कहना चाहते हैं, किन्तु गोलमाल प्रकार से। कुरानशरीफ (१५।४२) की टिप्पणी में उन्होंने लिखा है:—"The devil has no authority over any man but those who deviate follow him of their own accord." (पृष्ठ २६३) [शैतान को किसी मनुष्य पर कोई अधिकार नहीं है। किन्तु जो उल्लंघन करते हैं, वे अपनी इच्छा से उसका अनुसरण करते हैं]। इस प्रकार शैतान की शक्ति की श्री मुहम्मद अली ने इतिश्री कर दी है। मौलवी मुहम्मद अली ने कुरानशरीफ ५०।२१ का प्रमाण अपने पक्ष में दिया है। उसका अर्थ शाहजी ने इस प्रकार किया है :—'और हर जी, साथ उसके है हांकने वाला और शाहिदी देने वाला'। मौलाना अशरफ अली इसका अनुवाद इस प्रकार करते हैं :—"और हर शख्स इस तरह आवेगा कि उसके साथ एक उसको अपने हमराह लावेगा और एक गवाह होगा"। इन दोनों अनुवादों से तनिक भी प्रतीत नहीं होता कि हांकने वाला शैतान है और गवाह फरिश्ता है। इन अनुवादों के आधार पर कहा जा सकता है कि मौलवी मुहम्मद अली का अनुवाद स्व-

कपोलकल्पित है, निराधार है। अब मौलवी अब्दुल हकीम का अनुवाद देखियेः– 'और हर एक नफस आयेगा कि उसके साथ एक हांकने वाला और एक शाहिद होगा'। इस पर मौलवी अब्दुल हकीम ने यह टिप्पणी की है। 'नेक का हांकने वाला तो उसका शौक और जज़बा (रुचि तथा भावना) है जो उसको हजरत किब्रियायी (भगवान् के समक्ष) में ले जाता है। और बद का हांकने वाला उसकी गफ़लत-ओ-नहूसत (प्रमाद एवं भ्रष्टता) है जो उसको खींच कर जहन्नम् की तरफ ले जायेगी और शहीद उसकी हालत है'। मौलवी अब्दुल हकीम ने तो नेकी बदी दोनों को हांकने वाला बताया है। नेकी का हांकने वाला फरिश्ता नहीं और बदी को हांकने वाला शैतान नहीं है। यहां नेकी या बदी का हांकने वाला नहीं वरन् नेक और बद के हांकने वाले हैं। यहां गवाह (शहीद) मनुष्य की अपनी हालत है। यहां ले जाने वाले उसके भले वा बुरे कर्म हैं, फरिश्ते वा शैतान नहीं।

जो भी हो मौलवी मुहम्मद अली का यत्न है कि फरिश्ते, शैतान तथा जिन्न शरीरधारी न रहें। भले विचारों को वह फरिश्ते और बुरे भावों को वह शैतान बनाना चाहते हैं। बहुत अच्छा है।

इस विषय में श्री मुहम्मद नूरुद्दीन कारी काश्मीरी भी मौलवी मुहम्मद अली के साथ हैं वह लिखते हैं :—'मरते वक्त अज़ाब या सवाब के फरिश्ते आते हैं वह दर हकीकत मरने वाले के बद व नेक आमाल होते हैं' (इस्लामी अकायद पृष्ठ ७४)।

बागे अदन

कुरानशरीफ में आदम की कथा है। आदम तथा हव्वा को उत्पन्न करके खुदा ने उन्हें बागे-अदन में ठहराया। वहां की सभी वस्तुओं के उपयोग एवं उपभोग की अनुमति दे दी, किन्तु एक वृक्ष के फल खाने से उन्हें वर्जं दिया। शैतान ने अवसर पाकर दोनों को बहका दिया और उन्होंने उसके धोखे में आकर उसके फल खा लिये। इसका परिणाम यह निकला कि उन्हें अपना नंगापन दीखने लगा और वे बाग के पत्तों से अपने को ढांपने लगे।

यह वर्णन हम ने मौलवी मुहम्मद अली के (भू०पृष्ठ LXXIX) पर

दिये गये वर्णन के आधार पर लिखा है। जैसा यह वर्णन है, उससे स्पष्ट सिद्ध होता है कि यह वाग किसी स्थान विशेष में है। मुसलमानों में प्रचलित धारणा के अनुसार यह वहिश्त में है। किन्तु मौलवी मुहम्मद अली ने इसका सफाया कर दिया है, इसी पृष्ठ पर इसके सम्बन्ध में उनका यह लेख है:—"All this clearly shows that the garden is not an earthly garden but stands for a state of contentment and rest in which there is no struggle." [यह सब स्पष्टतया सिद्ध करता है कि यह बाग सांसारिक बाग नहीं है किन्तु सन्तोष और शान्ति का वाचक है जिसमें कोई संघर्ष नहीं है]। मौलाना अशरफ अली ने इस पर अपनी टिप्पणी में लिखा है—"हाजते अस्तंजा (शौचादि के बाद जलादि द्वारा शुद्धि की आवश्यकता) और हाजते शहवत (कामवासना की आवश्यकता) जन्नत में न थी और उन पर कपड़े थे वह कभी उतारते न थे कि उतारने की हाजत न होती थी। ये अपने आज़ा (अंगों) से वाकिफ न थे। जब यह गुनाह हुआ तो लवाजिमे बशरी (मानुषी विधान) पैदा हुए, अपनी हाजत से खबरदार हुए और अपने आज़ा (अंग) देखे'।

मौलवी सना-उल्ला ने इसपर अपने भाष्य में विस्तार से लिखा है:—"और आदम को हुक्म दिया 'ए आदम ! तू और तेरी बीबी बाग में बसो और जहां से चाहो, बेरोकटोक खाओ और उस दरख्त वगैरह के नजदीक न जाना, वरना (अन्यथा) तुम नाफरमानों (आज्ञा भंग करने वालों) में से हो जाओगे'। फिर शैतान ने इन दोनों खाविन्द बीवी को वहकाया ताकि उनकी शर्मगाहें (गुह्य अंग) जो उन से मखफी (गुप्त) थीं उनके सामने बरहना (नग्न) करके दिखा दे, क्योंकि उस दरख्त का नाम नेको वद की पहचान का दरख्त था। उसी के खाने से उनको समझ आयी कि हम बरहना हैं, हम को नंगा न रहना चाहिये और शैतान ने बहकाने को उनसे कहा कि खुदा ने इस दरख्त के फल खाने से तुम को महज इसलिये मना किया है कि तुम उसके खाने से फरिश्ते न बन जाओ या हमेशा इसी बाग में न रह जाओ क्योंकि इस दरख्त की तासीर ही यही है कि जो कोई खाता है वह या तो फरिश्ता बन जाता है या दायम (सर्वदा) इसी जन्नत में इकामत गुजीनु (निवासी) होता है। और इस बात के यकीन

दिलानें को वह कसम खाकर कहता रहा कि वल्लाह विल्लाह मैं तुम्हारा खैर-ख्वाह (शुभचिन्तक) हूं। फिर धोखे से उनको फुसला ही लिया। पस उस दरख्त को उन्होंने खाया ही था कि उनकी शर्मगाहें उन्हें दिखायी देने लगीं और जब वे शर्म के मारे पानी पानी हुए जाते थे और वह वाग के चौड़े-चौड़े पत्ते अपने ऊपर लपेटने लगे और खुदा ने उनसे कहा क्या मैंने तुम को इस दरख्त के फल खानें से मना न किया था और नहीं कहा था कि शैतान तुम्हारा सरीह (स्पष्ट) दुश्मन है और वह दोनों खाविन्द वीवी अपने कसूर के मुश्तरिफ (स्वीकारी) हुए।........खुदा ने कहा इस वाग से उतरे रहो"।

इस सन्दर्भ में 'नेको वद की पहचान का दरख्त' पर मौलवी सना-उल्ला ने यह टिप्पणी भी लिखी है :—"इस अम्र के मुतअल्लिक (विषय के सम्बन्ध में) कि यह वाग जमीन पर था या आस्मान पर, कोई आयत मरफू नहीं आयी। अलवत्ता एक हदीस में वनी इस्राईल से रिवायत की इजाजत आयी है। आं हजरत सलल्ला व अलैहे व सल्लम ने फरमाया है:'.......यानी वनी इस्राईल से सहीह रिवायत जो कुरानं से किसी तरह मुखालिफ न हो बयान कर लिया करो'। अगर इस इजाजत पर बिना (आधार) करके तौरेत से इसका पता दर्याफ्त करें तो वागे अदन मालूम होता है। चुनाचि मोजूदा तौरेत की पहली किताब पैदायश (उत्पत्ति) वाव दोम (द्वितीय पर्व) का सरीह (स्पष्ट) मजमून (विषय) है"।

यहां मौलवी सना-उल्ला इस वाग को वास्तविक वाग और वह भी भौतिक मानते हैं। महत्व की वात यह है कि मौलवी सना-उल्ला ने वाग का निर्णय करने के लिये तौरेत की उत्पत्ति के दूसरे पर्व से इस वृक्ष का पता वताया है। उसकी दसवीं तथा सतरहवीं आयत में उस वृक्ष को 'भले वुरे के ज्ञान का वृक्ष' कहा गया है। वाईवल का वर्णन तो स्पष्ट ही भौतिक है। वाईवल में इस वाग का वर्णन इस प्रकार है:—"और उस वारी के सींचने के लिये एक महानद अदन से निकलता था और वहां से आगे चलकर चार धार हो गया। पहली धार का नाम पीशोन है। यह वही है जो हवीला नाम सारे देश को जहां सोना निकलता है घेरे हुए है। उस देश का सोना चोखा होता है और वहां मोती और सुलैमानी पत्थर भी मिलते हैं। और दूसरी नदी का नाम गीहोन (जीहून)

है यह वही है जो कूश सारे देश को घेरे हुए है। और तीसरी नदी का नाम हिद्देकेला (दजला) है यह वही है जो अश्शूर की पूरब ओर बहती है। और चौथी नदी का परात (फरात) है"।

बाईबल का यह वर्णन तो अरब देश पर लागू होता है। इस लिये मौलवी मुहम्मद अली का यह कहना कि "This garden is not earthly" [यह बाग पृथ्वी पर का (भौतिक) नहीं है] मुस्लिम परम्परा के नितान्त विरुद्ध है। यदि यह कहा जाये कि कुरानशरीफ में इसका वर्णन नहीं है अतः यह प्रामाणिक नहीं, तो इसका उत्तर यह है कि कुरानशरीफ में इसका खंडन या संशोधन भी नहीं है। अतः मानना चाहिये कि मौलवी मुहम्मद अली की खींचातानी है। तो भी हम मौलवी मुहम्मद अली के प्रयत्न की प्रशंसा किये बिना नहीं रह सकते। अपने अपने मन्तव्यों को विज्ञानानुमोदित बनाने का यत्न एक दिन सारे मतों के पारस्परिक विरोध को शान्त कर देने में समर्थ हो सकेगा। देखें, वह शुभ दिन कब आता है।

बाग अदन की चर्चा में वर्ज्य वृक्ष की चर्चा भी आई है। मौलवी मुहम्मद अली ने इसे "The well-known *tree of evil*" (भू० पृष्ठ LXXIX)" [बुराई का प्रसिद्ध वृक्ष] कहने का साहस किया है। मौलवी मुहम्मद अली ने इसके लिये हेतु दिया है कि कुरानशरीफ २०।१२० में शैतान ने इसे "Tree of immortality" (अमरता का वृक्ष) कहा है। "Showing that it is really the tree which brings death i.e. the tree of evil". (भू० पृष्ठ LXXIX-LXXX) [इससे प्रकट होता है कि यह सचमुच वह वृक्ष है जो मृत्यु लाता है अर्थात् बुराई का वृक्ष]। आश्चर्य है कि अमरता वाला वृक्ष मृत्यु लाता है। मौलवी मुहम्मद अली का यह तर्क हमारी बुद्धि में तो आया नहीं। यदि इसे आप बुराई का वृक्ष कहते हैं तो अलंकार का आसरा तो यहां भी लेना होगा, अतः सरलता से 'भले बुरे की पहचान वाला वृक्ष' कहिये और अलंकार भी मानिये। इसके लिये बाईबल से आप को सहारा मिल जायेगा, वहां इसके साथ एक और वृक्ष का भी वर्णन है, जिसे 'जीवन का वृक्ष' कहा गया है। स्पष्ट है 'जीवन का वृक्ष' का अर्थ है जीवन सामग्री, आजीविका का साधन। इसी भांति 'भले बुरे की पहचान का वृक्ष' का अर्थ होगा भले बुरे

के ज्ञान का साधन।

अस्तु ! जो भी हो मौलवी मुहम्मद अली ने कुरान को बुद्धिपूर्वक बनाने के लिये भारी परिश्रम किया है।

जिन्न

मुसलमान फरिश्तों के साथ जिन्नों को भी मानते हैं, उनकी उत्पत्ति अग्नि से मानते हैं। कुरान में स्थान स्थान पर जिन्नों का वर्णन है। कुरान में यह भी वर्णन है कि हजरत सुलैमान के पास जिन्नों की भी एक सेना थी (२७।१७)। मुसलमान इसे हजरत सुलैमान की लोकोत्तर चामत्कारिक शक्ति का परिचायक मानते हैं, किन्तु मौलवी मुहम्मद अली ने इन्हें मनुष्य बना दिया है:—"The jinn were no doubt the hardy non-Israelite tribes subjugated to the Israelites. Elsewhere they are spoken of as 'those who worked before him by the command of his Lord' (34 : 12) and 'made for him what he pleased of fortresses and images' (34-13). Clearly these were the foreigners whom Soloman employed to build the temple, 'men skilled in architecture, 'for the Arabs', as Tabrezi in his commentary on Himasa remarks, 'speak of the jinn frequently likening a man who is clever in executing affairs to the *Jinns* and the *shaitan* or the devil'. And men employed by Solomon in this and similar services are elsewhere spoken of as devils." (भू० पृष्ठ CIII)। [निस्सन्देह इस्रायेलियों की आधीनता में आई हुई परिश्रमशील अन-इस्रायेली जातियां ही जिन्न थीं। कुरान में दूसरे स्थान पर उनके सम्बन्ध में कहा गया है :—'वह जिन्होंने सुलैमान के सामने उसके मालिक (परमात्मा) के आदेश से कार्य किया' (३४।१२) तथा 'उसकी इच्छानुसार दुर्ग तथा मूर्त्तियां उसके लिये बनायीं' (३४।१३)। स्पष्ट ही ये शिल्पक्रिया में चतुर विदेशी थे जिन्हें सुलैमान ने मन्दिर बनाने में लगाया। जैसा

कि 'हिमासा' पर अपने भाष्य में तब्रेजी कहता है :—'कि अरब लोग कार्य सम्पन्नता में कुशल मनुष्य को प्रायः जिन्न या शैतान से उपमा देते हैं। इस तथा अन्य प्रकार की सेवाओं में, सुलैमान द्वारा प्रयुक्त मनुष्यों को दूसरे स्थान में जिन्न या शैतान कहा गया है]। इसके आगे उसी पृष्ठ पर कुरानशरीफ की एक आयत का अनुवाद देने के अनन्तर मौलवी मुहम्मद अली लिखते हैं :—
"The latter seem to be those who were forced into service or they may have been the prisioners of war." [अन्तिम वे प्रतीत होते हैं जिन्हें बलात्कार से सेवा में लगाया गया अथवा वे युद्धवन्दी थे]।

तात्पर्य यह है, कि मौलवी मुहम्मद अली के मतानुसार जिन्न मनुष्य ही हैं। किन्तु एक बात इनके लेख में बहुत खटकती है। यदि इस्लामी सिद्धान्त में जिन्न मनुष्य ही हैं, तो तब्रेजी के कथनानुसार मनुष्यों और जिन्नों में उपमान उपमेय भाव नहीं बन सकता। संशोधन का कार्य बहुत विकट है। उसमें प्रोत्साहन देना चाहिये, छिद्रान्वेषण से उत्साहभंग होने की आशंका रहती है। अतः हम मौलवी मुहम्मद अली के प्रयत्न की सराहना ही करते हैं।

कयामत तथा मरणोत्तरजीवन

मुसलमान मनुष्य का केवल वर्त्तमान जन्म मानते हैं। इस से पूव अथवा पश्चात् कोई जन्म नहीं मानते। हां, इतना अवश्य मानते हैं कि कयामत के दिन सब मुर्दे कब्रों से उठाकर जिलायें जायेंगे और अपने भले या बुरे कर्मों के अनुसार स्वर्ग या नरक भेज दिये जायेंगे। स्वामी जी ने इस सिद्धान्त पर कई आपत्तियां उठाई हैं। उनकी एक आपत्ति यह है कि शरीर तब तक गल चुकेंगे, फिर वे शरीर सहित कैसे उठ सकेंगे। मौलाना अशरफ अली ने इसका समाधान कुरानशरीफ ५०।३ की टिप्पणी में यह लिखा है :—'बुखारी की हजरत अबू हुरैरा की हदीस ऊपर गुजर चुकी है कि हश्र (कयामत) के दिन एक मेंह बरसेगा जिस से हजरत आदम के जमाना से लेकर कयामत तक के जिस कद्र जिस्मों की खाक जमीन में है उससे सब जिस्म बनकर तय्यार हो जायेंगे जिस तरह अब मेंह से हर तरह के दरख्त तैयार हो जाते हैं।

फिर उनके जिस्मों में रूह फूंक दी जायेगी। इन्सान के पैदा करने से पहले खुदा ने एक किताब पैदा की है जिस में उनकी खाक उड़ कर जहां कहीं जायेगी वह उस किताब में लिखा हुआ है उसी तरकीब से हर एक खाक जमा कर ली जायगी और जिस तरह अनाज के एक दाना से हजारहा दाने और एक गुठली से तोदे के तोदे मेवों के, मेंह से, सब की आंखों के सामने, खिलाफे अक्ल, जमीन से पैदा होते हैं इसी तरह हश्र के दिन एक मेंह के असर से अल्लाताला उनके जिस्मों को पैदा करेंगे"। मौलाना को स्वयं यह समाधान 'खिलाफ अक्ल' बुद्धिविरुद्ध प्रतीत हुआ, अतः हम इस पर क्या टिप्पणी करें। स्वामी जी के आक्षेप में सार ने मौलाना को लाचार कर दिया है।

मुसलमान यह मानते हैं कि उस दिन सब के कर्मों के फलों का निर्णय होगा और कि प्रत्येक के गले में उसके कर्मों का पट होगा। मौलवी मुहम्मद अली इसको पलट देते हैं। वह कहते हैं :—"It is a law that works every moment and will not come into operation on a particular day." (भू० पृष्ठ LVIII) [यह एक नियम (कानून) है जो हर क्षण कार्य करता है और यह नहीं कि यह किसी विशेष दिन पर चालू होगा]। आगे चल कर वह लिखते हैं :—"Hence God is called *'Quick in reckoning'* repeatedly (2 : 220; 3 : 18, 198, etc.) meaning that his reckoning is working every moment." (भू० पृष्ठ LVIII) [इसीलिये अल्ला को 'सरीऊल हिसावे' (शीघ्र लेखा करने वाला) कहा गया है (२/२०२; ३/१८, १९८, आदि) जिसका अर्थ यह है कि उसका लेखा प्रतिक्षण चालू है]। आगे चलकर इसी पृष्ठ पर फिर कहा गया है :—"The law of the requital of good and bad is thus working all along." [भले बुरे के पृथक्करण का नियम प्रत्येक समय कार्य कर रहा है]।

ऋषि दयानन्द के आक्षेप के प्रकाश में मौलवी मुहम्मद अली ने यह नई व्याख्या लिखी है। मुसलमान इसे मान जायें, तो वैदिकों तथा उनमें भेद और भी कम हो जाये।

कर्मफल देने का प्रकार

इसी प्रसंग में एक प्रश्न उठता है कि कर्मों का फल कैसे मिलता है। मौलवी मुहम्मद अली इसका जो उत्तर देते हैं, वह महत्वपूर्ण है :—"Every evil deed leaves its impress on the human mind. 'Nay rather what they do has become rust upon their hearts' (83 : 14), so that the consequence follows as soon as a deed is done." (भू० पृष्ठ LVIII) [प्रत्येक बुरा कर्म मनुष्य के मन में अपनी छाप छोड़ जाता है। नहीं-नहीं, अपितु जो कुछ वे करते हैं, उसका जंगार उनके हृदय पर हो गया है (८३/१४)। यहां तक कि ज्योंही कोई कर्म किया जाता है त्योंही उसका फल उसका पीछा करता है]। इसके तनिक आगे फिर लिखा है :—"Thus an action leaves its effect upon man as soon as it is done." [इस भांति कर्म मनुष्य पर अपना प्रभाव छोड़ जाता हैं ज्योंही यह किया जाता है]।

यह व्याख्या इस्लाम को वैदिक धर्म के अति समीप ला खड़ा करती है। वैदिक सिद्धान्त भी यही है कि प्रत्येक कर्म का आत्मा पर संस्कार पड़ता है और उस संस्कार के द्वारा समय पर फल मिलता है।

कर्मपुस्तक

इस्लामी मन्तव्य के अनुसार कयामत क दिन प्रत्येक मनुष्य को उसके कर्मों का पुस्तक दिया जायेगा। अब जब कर्मफल का प्रकार संस्कार हो गये, तो कर्मपुस्तक के रूप में भी परिवर्त्तन होना चाहिये। इस विषय में मौलवी मुहम्मद अली लिखते हैं :—"The first of these quotations shows that the book of deeds which a man will find on the resurrection day is nothing but the effect of the deeds he has done........The book of deeds is, therefore, within the man because the deeds are preserved by the effect which they leave on man." (भू० पृष्ट LXI) [इनमें से पहला उद्धरण यह सिद्ध करता है कि कर्म पुस्तक जो

मनुष्य को कयामत के दिन मिलेगी उसके अपने किये कर्मों के प्रभाव के अतिरिक्त कुछ नहीं है········अतः यह कर्मपुस्तक मनुष्य के भीतर है यतः यह कर्म के प्रभाव से सुरक्षित है जो कि कर्म मनुष्य पर छोड़ जाते हैं]। मौलवी मुहम्मद अली व्यक्तियों की भाँति जातियों के कर्म्मों के संस्कार को ही उनके कर्म्मों की पुस्तक मानते हैं। दयानन्द की आलोचना का कितना गहरा प्रभाव है।

कुरानशरीफ में इस सम्बन्ध में 'किताव' (पुस्तक) तथा 'कतब' (उसने लिखा) ये दो शब्द आते हैं। इनके सम्बन्ध में मौलवी मुहम्मद अली का कहना है कि :—"It must, however, be borne in mind that the word '*Kitab*' (translated as book) or '*Kataba*' (he wrote) is used in a very wide sence in the Holy Quran. As Raghib says, '*Kitab*' (book) does not always means '*a collection of written leaves*'; it sometimes signifies '*the Knowledge of God* or *His command*' or what he has made obligatory. Nor does '*Kitaba*' always signifies '*that he wrote certain words*' on paper with ink and pen; it also means '*he made a thing obligatory* or *deccreed*, or *ordained* or *prescribed*' a thing. Let us now see what is meant by the writing of the deeds and the book of deeds. The above quotations show that by the writing of deeds is meant their preserving and guarding." (भू० पृष्ठ LX) [किन्तु यह ध्यान में रख लेना चाहिये कि 'किताव' (पुस्तक) शब्द अथवा 'कतव' (उसने लिखा) शब्द कुरानशरीफ में बहुत विस्तृत अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। जैसा कि रागिव कहता है 'किताब' शब्द का अर्थ सदा 'लिखे पन्नों का संग्रह' ही नहीं है। कभी-कभी इसका अर्थ 'परमात्मा का ज्ञान, उसका आदेश, अथवा जो उसने अनिवार्य (अवश्य कर्त्तव्य) ठहराया है' भी है। न ही 'कतब' शब्द का सदा यह अर्थ है कि 'उसने कागज पर स्याही तथा लेखनी से कुछ विशेष शब्द लिखे'। इसका

यह भी अर्थ है कि 'उसने एक बात को अनिवार्य ठहराया, वा निर्णय किया'। अब हमें देखना चाहिये कि कर्मों के लिखने और कर्मों के पुस्तक का क्या तात्पर्य है ? ऊपर के उदाहरण से सिद्ध होता है कि कर्मों के लिखने का अर्थ है, उनका सुरक्षित रखना]।

कर्मपुस्तक के गर्दन में लटकाये जाने को भी अलंकार माना है। यदि इन बातों को सर्वसाधारण मुसलमान भी मान लें तो उनका तथा संसार का अतिशय कल्याण हो।

मीजान (कर्मतुला)

इसके साथ मीजान की चर्चा भी करनी योग्य है। प्रचलित इस्लामी सिद्धान्त के अनुसार कयामत के दिन खुदा मनुष्यों के कर्म तोलेगा। कयामत के सम्बन्ध में पहले लिख चुके हैं कि मौलवी मुहम्मद अली प्रतिदिन कयामत मानते है। अब कर्मतुला (मीजान तराजू) की कथा सुनिये :—"A man is judged by the preponderance of good or evil in him and it is in this connection that the setting up of a '*mizan*' or balance is spoken of. The word '*wazn*' and '*mizan*', as used in the Holy Quran in this connection do not indicate weighing with a pair of scales; it is in the wider sense of fulfilling the requirements of justice that they are used." (भू० पृष्ठ LIX) [मनुष्य अपनी भलाई वा बुराई की बहुतायत से जांचा जाता है, 'मीजान' वा 'वज्न' का स्थापित करना इसी संबन्ध में प्रयुक्त हुआ है। इस संबन्ध में कुरान-शरीफ में प्रयुक्त 'वज्न' और 'मीजान' शब्दों का अर्थ तराजू से तोलना नहीं है। यह तो न्याय की आवश्यकता को पूरा करने के विस्तृत अर्थों में प्रयुक्त हुए हैं]। अर्थात् तराजू भी वास्तविक नहीं है, प्रत्युत आलंकारिक है। देखिये, ऋषि का चमत्कार।

श्री मुहम्मद नूरुद्दीन कारी काश्मीरी ने भी यही बात इन शब्दों में कही है :—'कयामत में खुदाताला अपने इल्मे अजलीओ अब्दी (अनादि

अनन्त ज्ञान) के और कुल्लियाओ जुज्जिया (समग्र तथा अवयवों) के आलिम होने के वायस अपनी अजली और अव्दी सिफ़ते अद्ल से हर एक के आमाले नेको बद की मिकदार (परिमाण) उन पर जाहिर कर देगा। बस इसी सिफ्ते अदल को 'मीजान' और 'वजने आमाल' से तावीर (उल्लेख) किया है। चुनाचि कुरानशरीफ में निहायत साफ तौर पर फरमाया है.........(सूरते अंबिया: रुकू आ० ५) यानि:—'हम कयामत के दिन मीजान अद्ल को रखेंगे' और यह: आमाल की मीजान कोई माद्दी अश्या (प्राकृतिक वस्तुओं) की सी मीजान न होगी। क्योंकि इन्सान के आमाल कोई माद्दी चीज नहीं हैं। मगर किसी न किसी रूप में मवाजना (तोलना) अवश्य होगा' (७९ पृष्ठ)।

सूर फूकना

मुसलमानों का सिद्धान्त है कि कयामत के दिन एक फरिश्ता सूर फूंकता है जिस की ध्वनि सुनकर सब मृतक जी उठते हैं और अल्ला के सम्मुख उपस्थित होते हैं। श्री मुहम्मद नूरुद्दीन कारी काश्मीरी 'इस्रारे शरीयत तृतीय भाग' के आधार पर लिखते हैं:—'कुरान शरीफ में जिस तरह जाते वारी ताला (परमेश्वर के व्यक्तित्व) के मुनज्जा (निर्दोष) पाक होने और उनके कामों का वयान है, वह इस किस्म के खयालात का विलकुल मानिअ (निषेधक) है कि जाहिर तौर पर करना यानि विगुल लेकर कोई फरिश्ता फूंके। नफखे-सूर या करना फूंकना सिरफ एक इस्तेआरा (अलंकार) है बुअस, व हश्र और तवद्दुले हालत का (कयामत तथा स्थिति-परिवर्तन का)। जिस तरह लश्कर में करना फूंकने से मुजतमआ (एकत्रित) होने और लड़ने को खड़े हो जाते हैं और गिरोह दर गिरोह (संघशः) आ मौजूद होते हैं, उसी वुअस व हश्र में इरादा-ए-इलाही (परमात्मा के संकल्प) से जिस तरह कि उसने अपने कानून में किया है, होगा। वक्ते मौऊद (प्रतिज्ञात समय) में सब लोग उठेंगे और जमा हो जायेंगे। इस हालत का नफ़खे-सूर से इस्ते-आरा किया गया है' (पृष्ठ ७५)।

एक ओर, प्रतिदिन कर्मों के निर्णय की बात कहते हैं और यहां सूर फूंकने को आलंकारिक बातें बताते हैं। कयामत को, जिस दिन कि सब मुर्द

जी उठेंगे, एक विशिष्ट दिन भी आलंकारिक रूप से माना है। किन्तु सुधार की भावना में पुराने संस्कार बाधा डालते ही हैं। यह उसका एक उदाहरण है। सूर फूंकना वास्तविक न रहे तो अन्य अनेक वस्तुओं का अस्तित्व जाता रहेगा।

देखा, कारी साहिब सूर के फूंके जाने से इनकारी हैं, किन्तु मौलाना अशरफ अली कुरान शरीफ २०।१०२ (यौमऽयुनूफखो फिस्सूरे=उस दिन कि फूंका जायेगा बीच + सूर के) पर टिप्पणी में लिखते हैं :—"हदीस शरीफ में आया है कि रसूलुल्ला से सूर का सवाल आया तो आपने फरमाया 'वह एक सींग है जिसमें फूंका जावेगा'। और सूर की हदीस में अबूहुरैरा की रिवायत से आया है कि वह एक सींग है बड़े दायरे वाला आस्मान और जमीन के मुताबिक, इसमें इस्राफील फूकेंगे"। मौलवी अब्दुल हकीम तथा मौलवी सना-उल्ला भी सूर फूंकना मानते हैं। उसकी कोई आलंकारिक व्याख्या नहीं करते। मौलवी मुहम्मद अली ने भी सूर फूंकना माना है 'When the trumpet shall be blown' इस पर उन्होंने किसी प्रकार की टिप्पणी नहीं की।

सूर न फूंके जाने के विषय में बेचारे कारी काश्मीरी साहिब अकेले हैं, अतः एव उनकी कल्पना का कोई महत्व नहीं है। किन्तु उनकी कल्पना मे उस दिशा का अवश्य निर्देष किया है, जिस ओर चिन्ताशील, तर्कान्दोलित लोग चल रहे हैं। वे अपने पैतृक मत पर दृढ़ भी रहना चाहते हैं और उसका संस्कार परिष्कार भी करना चाहते हैं। यह हो जावे, तो मत-मतान्तरों का विरोध समाप्त होकर ऐक्यमत हो जाये।

हाथ पांव का साक्ष्य देना

कुरानशरीफ में आता है कि कयामत को मनुष्य के हाथ पांव आदि उसके कुकर्मों का साक्ष्य देंगे, और मुसलमानों का यह माना हुआ सिद्धान्त है, किन्तु इस विषय में श्री कारी काश्मीरी की व्याख्या देखिये:—"शहादत (साक्ष्य)

+यह अनुवाद कारी साहिब का है मौलाना अशरफ अली का अनुवाद इस प्रकार है :—"जिस रोज सूर में फूंक मारी जायेगी"।

तहरीरी भी होती है और तकरीरी भी। और तकरीर जबान से और ईमा व किताया (संकेत) से भी। इसी तरह कलाम भी दो तरह का होता है। एक आतशकजदा (आतशक से पीड़ित) आदमी तबीवे-हाजिक (सिद्धवैद्य) के सामने आता है तो उसके हाथ और पांव के नक्शो निगार (चिह्न) जो आतशक से पैदा होते हैं और उसकी आँख कान की हालत साफ साफ गवाही देती है कि यह आतशक का मारा हुआ है और कि यह इसमें मुब्तला (फंसा हुआ) है।.........और इस तरह हजारों बीमारियों में यह अम्र (बात) मशहूर है और फिर अलीम (सर्वज्ञ) व खबीर (सब जानने वाला) जाते कबीर (महान् भगवान्) के सामने कान और आंख और दीगर आजा क्योंकर गवाही न दे सकेंगे" (पृष्ठ ७६)। अर्थात् यह बात भी वास्तविक नहीं, आलंकारिक है।

श्री कारी काश्मीरी जी कयामत के दिन मनुष्यों के उन पुरातन अंगों का भगवान् के द्वारा पुर्ननिर्माण मानते हैं। इसमें भगवान् की सर्वशक्तिमत्ता को हेतु बताते हैं। अच्छा तो यह था कि इस बात को भी अलंकार का रूप दे देते। हमारे विचार में जब किये कर्मों के संस्कार स्वीकार कर लिये गये तो हाथ, पैर आदि अंगप्रत्यंगों के साक्ष्य देने की आवश्यकता ही नहीं रहती। भगवान् सर्वज्ञ (आलिम-कुल) है, उसे साक्ष्य की क्या आवश्यकता।

बाईबल तथा कुरान का संबन्ध

स्वामी दयानन्द बाईबल और कुरान के तुलनात्मक अध्ययन से इस परिणाम पर पहुँचे कि कुरान में बहुत कुछ बाईबल से लिया गया है। योरोपियन विद्वान तथा बहुत कुछ मुसलमान भी इससे सहमत हैं, किन्तु मौलवी मुहम्मद अली इसका विरोध करते हैं :—"The idea that the Quran has only borrowed something from the earlier scriptures, especially from the Toret and the Gospels, must be examined in the light of facts. That the Quran deals with the religious questions which are dealt with in these books goes without saying; that it

relates the history of some of the prophets whose history is also narrated in the Bible is also a fact; but to say that it borrows this information is entirely wrong." (भू० पृष्ठ XXXIX) [इस विचार की कि कुरान ने पूर्ववर्त्ती धर्म्मग्रन्थों विशेषकर तौरेत तथा इंजील से केवल कुछ उद्धृत किया है, घटनाओं के आलोक में अवश्य जांच की जानी चाहिये। इसके कहने की कोई बात नहीं कि कुरान में उन धार्मिक समस्याओं का प्रतिपादन है जो कि इन पुस्तकों (तौरेत तथा इंजील) में प्रतिपादित हैं; और कि यह भी यथार्थ है कि इसमें कुछ उन पैगम्बरों का इतिहास वर्णित है जिनका इतिहास बाईबल में भी वर्णित है। किन्तु यह कहना कि कुरान ने यह जानकारी बाईबल से ली, सर्वथा अशुद्ध है] ।

ऐसा क्यों अशुद्ध है ? इसके समाधान में मौलवी मुहम्मद अली का कहना है कि धर्म्मतत्त्व का जिस प्रकार प्रांजल और उत्कृष्ट वर्णन कुरान में है वह न तो बाईबल में है और न किसी अन्य धर्म्मग्रन्थ में है। मौलवी मुहम्मद अली के इस कथन को हम केवल निष्प्रमाण गर्वोक्ति का नाम दे सकते हैं। हम पीछे दिखा चुके हैं कि मौलवी मुहम्मद अली जिसको कुरान का प्राण तथा संसार की सर्वोत्कृष्ट प्रार्थना बताते हैं, वह यजुर्वेद के ४०।१६ का अनुवाद है। (एकेश्वरवाद के संबन्ध में वेद का लगा कोई भी तथाकथित धर्म्मग्रन्थ खा नहीं सकता)। इस विषय में दूसरा हेतु मौलवी मुहम्मद अली का यह है :—

"And take, then, the histories of the prophets, as they are narrated in the Bible and as they are narrated in the Holy Quran, and you will find that the latter corrects the errors of the former as it does in the case of religious doctrines.........I may refer to one here in particular. The Bible speaks of many of the prophets of God as committing the most heinous sins; it speaks of Abraham as telling lies and casting away Hazar and her son." (भू० पृष्ठ XXX) [और फिर

पैगम्बरों के इतिहासों को लीजिये जैसा कि वे बाईबल में वर्णित हैं और जैसा कि वे कुरान में निरूपित हैं, तो आपको ज्ञात होगा कि कुरान बाईबल की अशुद्धियों का संशोधन करता है जैसा कि इसने धार्मिक सिद्धान्तों में किया है। ....मैं यहाँ विशेषकर केवल एक विषय का निर्देश करता हूँ। बाईबल में वर्णन है कि खुदा के अनेक पैगम्बरों ने अत्यन्त घृणित पाप किये। हजरत इब्राहीम के विषय में बाईबल का कथन है कि उन्होंने झूठ बोले तथा 'हाजरा' और उसके पुत्र को त्याग दिया]।

मौलवी मुहम्मद अली की इस युक्ति को मानने में हमें कोई आपत्ति न होती, यदि कुरानशरीफ में इब्राहीम के संबन्ध में भी इस बात का खण्डन होता। यदि यह कहा जाये कि कुरानशरीफ में हजरत इब्राहीम के सम्बन्ध में इसका वर्णन नहीं तो उसका उत्तर मौलवी मुहम्मद अली के अपने शब्दों में हम देते हैं। ईसा के सम्बन्ध से लिखते हुए मौलवी मुहम्मद अली ने यह लिखा है :—"Quran is not a book of History and is not concerned with the details of what happened to him after crucifixion, (भू० पृष्ठ XCVIII) [कुरान इतिहास का ग्रन्थ नहीं है। और न इसका उन घटनाओं के विस्तार से प्रयोजन है कि जो फांसी चढ़ाने के पश्चात् उस पर बीतीं]।

यदि यही कह दिया जाये कि कुरान इतिहास का ग्रन्थ नहीं है और कि उसे हजरत इब्राहीम के जीवन की विस्तृत घटनाओं से कोई प्रयोजन नहीं है, तो हजरत ईसा के सम्बन्ध में वर्णित बाईबली घटनाओं को अयथार्थ कहने का कोई साधन नहीं है। तब ?

कुरानशरीफ २१।५६-५९ में हजरत इब्राहीम का मूर्तिपूजकों के साथ संवाद तथा हजरत का उनके बुतों को तोड़ने और तद्विषयक मूर्तिपूजकों का हजरत से इस संबन्ध में पूछने का उल्लेख है। वहां वर्णन है :—"और खुदा की कसम मैं तुम्हारे इन बुतों की गत बनाऊंगा, जब तुम चले जाओगे, तो उन्होंने उन बुतों को टुकड़े-टुकड़े कर दिया बजुज उनके एक बड़े बुतके कि शायद वह लोग इब्राहीम की तरफ रुजूअ करें (प्रवृत्त हों)। इस के पश्चात् उन्हें ज्ञात हुआ कि हज़रत इब्राहीम ने बुत तोड़े हैं तब उन्होंने उनको बुलाकर

पूछा। उनके पूछने पर उन्होंने फरमाया, नहीं, बल्कि उनके इस बड़े बुत ने की, सो उनसे पूछ लो अगर यह बोलते हों"। यह अनुवाद मौलाना अशरफ अली का है, इसमें हजरत इब्राहीम के उत्तर में जो 'नहीं' शब्द है वह अर्थ लभ्य है। जैसा यह वर्णन है, उससे हजरत इब्राहीम पर मिथ्या बोलने का आरोप सिद्ध होता है। मौलाना अशरफ अली ने इस पर टिप्पणी करते हुए लिखा है :— "अबूहुरैरा से रिवायत है कि रसूलुल्ला ने फरमाया, 'इब्राहीम ने कभी झूठ नहीं बोला' मगर तीन मकामों में और दो (तो महज) अल्ला अज्जोजल्ल (महान् भगवान्) की खुशनूदी (प्रसन्नता) के लिये, एक उनका झूठ तो यह है कि उन्होंने फरमाया 'मैं ने इन बुतों को नहीं तोड़ा इस बड़े बुत ने तोड़ा है'। दूसरा झूठ यह है कि आपने फरमाया 'अनी सकीम'। यह दोनों झूठ महज अल्लाताला के लिये थे। और तीसरा झूठ यह कि आप एक बार एक जालिम बादशाह के मुल्क में जा रहे थे और आपके साथ आपकी बीबी सारः जा रही थी और आप एक मकाम में उतरे एक शख्स बादशाह के पास आया और बोला आपके मुल्क में यहाँ एक मर्द आया है उसके साथ एक औरत खूबसूरत है। जालिम ने उसको आप के पास भेजा। फिर इब्राहीम उसके पास आये। वह जालिम बोला 'यह औरत रिश्ते में आपकी कौन है'। आपने फरमाया 'यह मेरी बहन है'। जालिम बोला 'आप जाइये और अपनी बहन मेरे पास भेज दीजिये'। आप गये सारः के पास और फरमाया 'उस जालिम ने मुझ से तेरा रिश्ता पूछा था और मैं कह बैठा हूँ कि तू मेरी बहन है, तू मुझे उसके पास जाकर झुठलाना मत, इसलिये कि तू अल्लाताला की किताब में मेरी बहन है और जमीन पर तेरे और मेरे सिवा कोई मुसलमान नहीं है'। और आप खुद उसको लेकर गये फिर आप नमाज़ पढ़ने लगे जब सारः जालिम के पास दाखिल की गई और उस जालिम ने आपको देखा और आपको हाथ लगाने के लिये झुका तो खुद सख्त पकड़ा गया और बोला 'मेरे लिये अल्ला से दुआ करो मैं तुझको तकलीफ न दूंगा'। आप ने उसके लिये दुआ की, फिर वह खुल गया। हदीस के आखिर तक रिवायत किया इसको बुखारी व मुस्लिम ने इब्नकसीर"।

एक जिज्ञासु जो मुसलमान नहीं है, वह इन दो परस्पर विरोधी लेखों को पढ़कर चक्र में पड़ जाता है। मौलवी मुहम्मद अली ने इस आयत का जो

अनुवाद किया है वह स्पष्ट खींचातानी है।

हज़रत मूसा के सम्बन्ध में एक कथा बाईबल में आती है। उसका निर्देश कुरानशरीफ में भी है। वह यह है :—एक बार एक इस्राईली और एक मिश्री परस्पर झगड़ रहे थे। उधर हज़रत मूसा आ निकले। मूसा से उस इस्राईली ने सहायता मांगी, मूसा ने मिश्री को मुक्का मारा और वह मर गया। बाईबल में जो वर्णन है, उससे प्रतीत होता है कि हज़रत मूसा अपने इस कर्म से भयभीत हुए। इस पर मौलवी मुहम्मद अली लिखते हैं :—"Moses is not shown to be guilty of the murder of the Egyptian, his death being only accidental." (भू०पृष्ठ XC) [कुरानशरीफ में मूसा को मिश्री की हत्या का अपराधी नहीं ठहराया गया, उसकी हत्या तो अचानक ही हो गई थी]। हमारा विचार है मौलाना मुहम्मद अली की इस कल्पना से किसी भी निष्पक्ष आलोचक का मन सन्तुष्ट न होगा। मौलाना अब्दुल हकीम कुरानशरीफ २८।१५, पर जिसमें मूसा के इस कृत्य का निर्देश है, टिप्पणी करते हुए लिखते हैं :—"यानी किबती जो एक मुक्के से मर गया यह उसके शैतानी अम्ल का नतीजा है। बाज मुफस्सरीन् (भाष्यकारों) ने शैतानी अम्ल को मूसा की तरफ मनसूब किया है, यह सख्त गलती है क्योंकि शैतान का वसल्लुत (अधिकार) अंबिया अलैह सलाम (भगवान् के नबियों) पर नहीं हो सकता।.........हां, फिरऔनियों का एक कसूर मूसा से जरूर सरजद (सम्पन्न) हुआ जैसा कि एक और आयत २६।१४ और इसी सूरत की अगली आयत में है। मूसा उस कसूर से खौफ़जदः (भयभीत) होकर जनावेबारी (भगवान् के समक्ष) में दुआ करते हैं। 'ऐ मेरे रब्ब! मैं ने अपने नफ्स (जी) पर जुल्म किया, तू मुझ को पनाह दे'। पस अल्ला ने उसको पनाह दी" (२८।१६)।

आश्चर्य है कि इस २८।१६ से पूर्व ही तो मूसा द्वारा मिश्री के मारने का वर्णन है, तो यह प्रार्थना किसी और कसूर के लिये कैसे हो सकती है। मौ० अब्दुल हकीम ने इस कसूर का निर्देश २६।१४ की ओर किया है। कुरानशरीफ २६।१४ का मौ० अब्दुल हकीम इस प्रकार अनुवाद करते हैं :—"और मेरे जिम्मे उनका एक गुनाह भी है पस मैं डरता हूँ कि वह मुझे कत्ल न कर

डालें" । इस पर उन्होंने टिप्पणी में लिखा है :—"यानी खुदा का गुनाह नहीं बल्कि उनका गुनाह है, क्योंकि फिरऔन हजारहा बनी इस्रायेल को कत्ल करा चुका था । अगर एक किबती मूसा के मुक्का से मर गया तो कोई ज्यादती नहीं हुई । हां, वह अपनी समझ में बेशक इसको ज्यादती समझे हुये हैं" । इसी आयत २६।१४ पर मौलाना अशरफ अली की यह टिप्पणी है:—"एक किबती का खून हुआ था उनसे, सूरते कसस में आयेगा" । दूसरी टिप्पणी के अन्त में मौलाना अशरफ अली ने यह लिखा है :—"बाज ने यह मानी किये हैं कि मुझे क्या खबर थी कि यह शखस मुक्का मारने से मर जायेगा"। मौ० सना-उल्ला भी इस आयत के भाष्य में लिखते हैं :—'इस के अलावा एक और बात भी है जो मूजिबे खतरा (भय का कारण) है कि उनका मेरे जिम्मा एक गुनाह है जो उनका एक आदमी गलती से मारा गया था, लिहाजा मुझे खोफ है कि उसके एवज मुझे कत्ल न कर दें' । मौ० सना-उल्ला ने २८।१४ के भाष्य में इस पर विस्तार से लिखा है :—"जब मूसा आया तो उसने शहर में दो आदमियों को लड़ते पाया । एक उन में उसके गिरोह यानी बनी इस्रायेल से था और एक उसके मुखालिफ़ों यानी फिरऔन की कौम किबतियों से था । पस ज्यों ही कि उन्होंने मूसा को देखा तो जो उसकी कौम से था, यानी इस्रायेली, उसने मूसा से उसके दुश्मन के गिरोह वाले यानी फिरऔनी के बर खिलाफ मदद चाही क्योंकि फिरऔनी इस्रायेली को मार रहा था हजरत मूसा ने भी देखा कि वाकई (वास्तव में) उसकी ज्यादती है तो उसने उसे एक मुक्का मारा । गो मुक्का तो एक मामूली था, मगर इत्तफाकन् उसको ठिकाने पर लगा जिस ने उसका काम तमाम कर दिया यानी वह मर गया । हजरत मूसा अलैहसलाम उसी वक्त वहां से भाग निकला और खैरियत से डेरा पर पहुँच गया, वहां पहुँच कर उसे सख्त निदामत (पश्चात्ताप) हुआ कि यह कैसी बुरी हरकत मुझ से हुई, कि नाहक्क (व्यर्थ) मामूली सी बात पर खून हो गया । इस लिये उसने कहा यह तो शैतानी हरकत है बेशक वह सरीह (स्पष्ट) बहकाने वाला दुश्मन है । इसलिये दुआ करते हुये उसने कहा :— ऐ मेरे परवरदिगार ! तहकीक मैंने अपने नफस पर जुल्म किया कि नाहक मुझ से खून हो गया तो मुझे बखश दे पस खुदा ने उसे बख़्श दिया" ।

मौलाना अशरफ अली, मौ० अब्दुल हकीम तथा मौ० सना-उल्ला तो हजरत मूसा का अपराध मानते हैं, स्वयं कुरानशरीफ में मूसा के मुख से अपराध की बात कहलवाई गयी है। तो फिर मौलवी मुहम्मद अली ने ऐसा क्यों किया? उन पर स्वामी दयानन्द का प्रभाव है। स्वामी दयानन्द यह मानते हैं कि ऋषि प्रायः निर्दोष होते हैं और कि ऋषियों के विरुद्ध जो पुराण आदि में है वह सब प्रक्षिप्त है, अतः अप्रामाणिक है। मौलवी मुहम्मद अली ने ऋषि की यह बात गाँठ बांध ली। मौलवी मुहम्मद अली के लिये एक कठिनता है कि यह सारे किस्से कुरानशरीफ में आते हैं। अतः इनकी व्याख्या में उसे खींचातानी करनी पड़ती है। स्वामी दयानन्द के सामने ऐसी कोई कठिनता न थी, वेद में किसी मनुष्य का इतिहास है नहीं, ब्राह्मण ग्रन्थों, रामायण, महाभारत, पुराण आदि में इतिहास है। वे सर्वसम्मति से मनुष्य की रचना हैं। मनुष्य चाहे कितना ही महाज्ञानी, ऋषि महर्षि, देवर्षि, परमर्षि क्यों न हो जाये मनुष्य ही रहता है और मनुष्य के साथ अल्पज्ञता निसर्ग से रहती है, अतः उसे भ्रम का हो जाना अस्वाभाविक नहीं। और फिर वेद ईश्वरप्रणीत है, वेद की रक्षा का ऐसा× प्रबन्ध वेदभक्तों ने किया कि उसमें एक अक्षर का भी हेर-फेर नहीं किया जा सकता। मनुष्यकृत ग्रन्थों में अवश्य उलट फेर हुए, अतः स्वामी दयानन्द ने उनका खण्डन कर दिया। यहां तो किस्से कुरानशरीफ में हैं। अतः मौलवी मुहम्मद अली के मार्ग में बहुत बड़ा रोड़ा है। कुरान पर ईमान न रखें तो मुसलमान न रहें। अतः उन्होंने इन किस्सों की नई व्याख्या की है, जो है स्वयं कुरान तथा इस्लामी परम्परा के विरुद्ध।

अब तनिक ईसा के सम्बन्ध में विचार कर लीजिये। मौलवी मुहम्मद अली ईसा को, ईसाई मन्तव्य के विरुद्ध, माता पिता के संयोग से उत्पन्न हुआ मानते हैं। ईसाई उसे बिना बाप का कहते हैं। मौलवी मुहम्मद अली ने इस विषय में सर सैयद अहमद खां का अनुकरण किया है। किन्तु मुसलमान विद्वान् इस बात को नहीं मानते हैं। मौ० सना-उल्ला इस विषय में आल् इम्रान् के भाष्य के पृष्ठ २७ की टिप्पणी में लिखते हैं :—"मुसलमान भी शुरू जमाना इस्लाम

× इसके लिये लेखक का 'विरजानन्द चरित्र' देखिये।

से आज तक इस अम्र के कायल हैं कि मसीह बे बाप पैदा हुए थे। मगर हाँ इस जमाना में हमारे मेहरबान सर-सैयद अहमद खां मरहूम ने इससे इन्कार किया है"। सर सैयद अहमद खां का खंडन करते हुए इसी भाष्य की इसी टिप्पणी में पुन: वह लिखते हैं :—"इसमें तो कुछ शक नहीं कि यहूद व नसारा और मुसलमान सबके सब इस अम्र पर मुत्तफिक़ हैं कि हजरत मसीह बे बाप हैं"। ईसाइयों और मुसलमानों की निस्बत तो आप भी कबूल करते हैं कि 'ईसाई और मुसलमान दोनों खयाल करते हैं कि हजरत ईसा सिर्फ़ खुदा के हुक्म से, आम इन्सानी पैदायश के खिलाफ बगैर बाप पैदा हुए थे" (पृ० ३६)। इसी टिप्पणी में पृष्ठ ४९ में पुन: लिखा है:—"सैयद साहिब और उनके हव्वारियों (अनुयायियों) से बढ़कर उन लोगों+से तअज्जुब है जो मसीह की बलादत (उत्पत्ति) बे बाप के तो कायल (मानने वाले) हैं और इस अम्र को भी मानते हैं कि सब मुसलमान सलफन्-च-खलफन् (प्राचीन परम्परा से) इसी तरह बे बाप ही मानते चले आये हैं, मगर बकौल उनके (उनके कथनानुसार) कुरान से बे बाप होना सावित नहीं। हजरत सावित तो रोजे-रोशन की तरह है 'आफताब आदम दलीले आफताब (सूर्य के लिये सूर्य ही प्रमाण है), मगर यों कहिये कि गौर नहीं या इन्साफ नहीं"।

मौलाना अशरफ अली कुरानशरीफ ३।३९ पर मुवाजह-उल-कुरान का यह वचन टिप्पणी में देते हैं :—"गवाही देगा अल्ला के हुक्म की यानी मसीह की। जब हजरत ईसा पैदा हुए हजरत यहीय्या लोगों को आगे से खबर देते थे। हजरत ईसा को अल्ला ने खिताब दिया है अपना हुक्म यानी महज हुक्म से पैदा हुए बगैर बाप के,"। मौलाना अशरफ अली ने कुरानशरीफ ३।४५ की टिप्पणी में लिखा है :—'ईसा को मरियम का बेटा इसलिये कहा है कि यह बे बाप के थे'। इसी आयत पर मौ० अब्दुल हकीम ने टिप्पणी में लिखा है :—"कुरान मजीद में इबारत के निजाम और सय्याक और सब्बाक (लेखनशैली, एवं अर्थ-व्यवस्था) से तो यही सावित है कि सैय्यदना (हमारे स्वामी) मसीह बिला बाप के पैदा हुए हैं, ईसाईयों और मुसलमानों का एतकाद (विश्वास) भी आम-

---

+मौलवी सना-उल्ला ने इस पर प्रान्त में लिखा है:—'बाज उलमा-ए-अमृतसर'।

तौर पर यही है"। इसके आगे सर सैय्यद अहमद खां की युक्तियां देकर उनका खण्डन करते हुए पृष्ठ २४८ पर उसी टिप्पणी में उन्होंने पुनः लिखा है:—"मगर आयाते कुरानी जिस तरतीव (क्रम) पर वाकिअ हैं उनके सीधे और साफ तरजमा से यही वाजिअ (स्पष्ट) होता है कि मसीह अलैहस्सलाम विला बाप के पैदा हुए"। फिर आगे इसी पृष्ठ पर लिखते हैं :—"चूंकि मसीह अलैहस्सलाम का विला बाप पैदा होना सीधे-सीधे तरजमा से साफ तौर पर जाहिर होता है, इसलिये हम को इस मजमून पर खारजी बहस (बहिरङ्ग विवेचन) करने की जरूरत नहीं, असल तरजमा काफी है"। मौलाना अशरफ अली कुरानशरीफ २३।५० पर टिप्पणी सं० १ में लिखते हैं :—"उनका निशानी होना यही था कि ईसा को अल्लाताला ने बगैर बाप के पैदा किया जैसा कि उसने आदम को बगैर मां बाप के किया और हव्वा को बनाया हजरत आदम से बगैर मां के"।

सारी इस्लामी परम्परा के विरुद्ध सर सैय्यद अहमद खां तथा मौलवी मुहम्मद अली का यह साहस उनके नवशिक्षा के आलोक से आलोकित होने के कारण है। सर सैय्यद अहमद खां ने जो ज्योति जलाई, वह बुझी नहीं, निरन्तर जल रही है। कभी कभी धीमी अवश्य पड़ जाती है।

ईसा की मृत्यु के प्रकार के सम्बन्ध में भी मौ० मुहम्मद अली ने अपने गुरु के आविष्कार को दोहराया है। उसके आविष्कार को प्रकट करने से पूर्व हम मौलाना अशरफ अली तथा मौ० सना-उल्ला का मत इस विषय में देना आवश्यक समझते हैं। कुरानशरीफ ४।१५७ पर मौलाना अशरफ अली ने टिप्पणी में लिखा है :—"इस बात पर अजमाअ (सर्वसम्मति) है कि ईसा अलैहस्सलाम वस्सलाम आस्मान पर जिन्दा मौजूद है और आखीर जमाने में दुनियां में आवेंगे और दीन इस्लाम को ताजा करेंगे, अजमाअ से इनकार कुफ्र है"।

मौ० सना-उल्ला इस विषय में लिखते हैं :—"असल बात तहकीकी हम बता चुके हैं कि उन्होंने हरगिज उसको कत्ल नहीं किया बल्कि अल्ला ने उसको अपनी तरफ जिन्दा उठा लिया। गो किसी आदमी का जिन्दा आस्मान पर चढ़ जाना बजाहिर (प्रत्यक्ष) आदत के खिलाफ और बाज कोत: अंदेशों (क्षुद्र विचार वालों) की नज्रों में न सिर्फ मुश्किल बल्कि महाल है। मगर

अल्ला के नजदीक ऐसे अमूर (कार्य) न महाल (असंभव) हैं न मुश्किल, क्यों कि अल्ला बड़ा ही जबरदस्त बड़ी हिकमत वाला है, बहुत से काम लोगों की नजरों में मुश्किल हों मगर अल्ला ऐसी हिकमत से उनको पूरा कर देता है कि बड़े-बड़े उकला (बुद्धिमान्) हैरान रह जाते हैं, जैसा कि मसीह का आस्मान पर उठाना जो जाहिर बीनों (प्रत्यक्षमात्र दर्शियों) की नज्र में बड़ी मुश्किल बात मालूम देती थी मगर खुदा ने उसको करके दिखा दिया। और अंजाम (अंतिम, परिणाम) यह होगा कि कुर्बेकयामत (कयामत के समीप) जब मसीह दुनियां में आयेगा तो उसके मरने से पहले पहले सब अहले किताब यहूद और नसारा उसको अल्ला का रसूल मान जायेंगे और वह कयामत के दिन उनकी शहादत देगा कि उन्होंने मुझे जैसा कि चाहिये था माना" (तफसीरे सनाई जिल्द दोम पृष्ठ २१६)।

मौलवी अब्दुल हकीम कुरानशरीफ ४।१५७ के अन्तिम भाग और ४।१५८ का अनुवाद इस प्रकार करते हैं :—"और यकीनन् उसको कत्ल नहीं किया बल्कि अल्ला ने उसको अपनी तरफ उठा लिया और अल्ला जबरदस्त हिकमत वाला है"। इस पर टिप्पणी में लिखा गया है :—"ईसाइयों का यह मसला है कि मसीह ने लोगों को अपनी और रूहुल्कुदस की इबादत के वास्ते बुलाया जिनको यहूद नहीं जानते थे और फिर वह सलीब पर मारे भी गये। इन दोनों अकायद (विश्वासों) के बमूजिब (अनुसार) मसीह झूठे नबी ठहरे। और इंजील की रू से जो मसलूम (सलीब पर चढ़ाया गया) हो, वह लानती होता है। इस्तिस्ना +२१।२३ में है :—'जो फांसी दिया जाता है वह खुदा का मलऊन है'। इस लिये लानती भी हुए, नऊज बिल्ला*। इन दोनों बातिल (मिथ्या) अकायद (विश्वासों) की तरदीद कुरानमजीद बड़े तकरा के

+हिन्दी बाईबल में इसका नाम व्यवस्थाविवरण है। हिन्दी में इसका यह अनुवाद दिया है:—'जो लटकाया गया हो वह परमेश्वर का स्रापित ठहरता है'। दोनों उर्दू, हिन्दी अनुवाद ईसाईयों के अपने कराये तथा छपाये हैं। हिन्दी में फांसी शब्द का प्रयोग बहुतायत से होता है, पुनः पादरियों ने क्यों उसका प्रयोग नहीं किया।

* अब्रह्मण्यं, शान्तं पापम्।

(दोहरा करके) साथ फरमाता है। मस्लूब या मकतूल (कत्ल किये जाने) की तरदीद तो इस आयत में मौजूद है······तालीमेशिर्क की निस्वत और आयात में तरदीद है"।

इन उदाहरणों से स्पष्ट सिद्ध हो रहा है कि मुसलमानों का, ईसाइयों की भाँति यह सिद्धांत है कि हजरत ईसा जीवित ही आस्मान में उठा लिये गये। ऊपर कुरानशरीफ ४।१५८ का अनुवाद दिया जा चुका है जिसमें खुदा द्वारा मसीह के ऊपर लेने का वर्णन है। उस पर मौलाना अशरफ अली ने टिप्पणी में मुवाजह-उल-कुरान का यह उद्धरण दिया है :—"यहूद कहते हैं हमने मारा ईसा को और मसीह और रसूलेखुदा नहीं कहते, यह अल्ला ने उनकी खता फरमाई और फरमाया उसको हरगिज नहीं मारा हक्क ताला ने, उसकी एक सूरत उनको बना दी उस सूरत को सूली पर चढ़ा दिया फिर फरमाया कि नसारा भी अव्वल से यही कहते हैं कि मसीह को नहीं मारा वह जिन्दा है लेकिन तहकीक नहीं समझते"। मौलवी सना-उल्ला अपने भाष्य के दूसरे भाग के ३४वें पृष्ठ की चौथी टिप्पणी में लिखते हैं:—'इस आयत के मानी में उलमा का करीब इत्तफाक है कि यहां मौत मुराद नहीं बल्कि दुनियां से उठाना मुराद है"।

किन्तु इन सब के विपरीत मौलवी मुहम्मद अली का चामत्कारिक आविष्कार यह है:—"And yet inspite of so many clear statements, the idea finds acceptance among some Muslims that Jesus Christ is still alive." (भू० पृष्ठ XCVII) [इन अनेक स्पष्ट कथनों के होने पर भी कुछ मुसलमान इस विचार को स्वीकार करते हैं कि ईसामसीह अब भी जीवित हैं]।

ऐतिहासिक घटनायें जब पुरानी हो जाती हैं तो उनमें भेद हो जाना आश्चर्यजनक नहीं है, आश्चर्यजनक तो है उनको अपने धर्म या विश्वास का आधार बनाना।

अब तक जो कुछ हम ने देखा है, वह यह कि मुस्लिम परम्परा को मानने वाले बहुत सी उन बातों को उसी प्रकार मानते हैं, कि जिस प्रकार बाईबल में वर्णित हैं, जो बाईबल की तथाकथित ऐतिहासिक बातें कुरानशरीफ

में नहीं मिलतीं, वे मुसलमानों के अन्य प्रामाणिक ग्रन्थों में मिल जाती हैं। अतः यह मानना पड़ता है कि कुरानशरीफ में की बहुत सी बातें बाईबल से ली गई हैं। बहुत से नवशिक्षित मुसलमान मौलवी कहते हैं कि ये बातें बाईबल से नहीं ली गईं, बल्कि खुदा ने इन का इल्हाम के द्वारा ज्ञान कराया, उनमें वे हेतु देते हैं कि इन ऐतिहासिक वर्णनों में कुरान तथा बाईबल का मतभेद है। ईसाई इस पर कहते हैं कि ऐसी सारी कथायें जिन का बाईबल और कुरान में मतभेद है, कुरानकार ने तालमूद आदि से ली हैं। हम इस विवाद में नहीं पड़ना चाहते, हम तो इतना कहना चाहते हैं कि मौलवी मुहम्मद अली की यह स्थापना मुस्लिम परम्परा से सर्वथा विरुद्ध है, किन्तु हम उसका संशोधन का अधिकार तथा नूतन परम्परा के प्रचलित करने का अधिकार मानते हैं।

मौलवी मुहम्मद अली किस प्रकार घटनाओं को तोड़ते हैं इसका एक उदाहरण हम यहां प्रस्तुत करना चाहते हैं। मौलवी मुहम्मद अली लिखते हैं:—"Quran is not a book of history and is not concerned with the details of what happened to him after crucifixion, but it tells us that both he and his mother were given 'a shelter on a lofty ground having meadows and spirings.' (23/50) which description applies to Cashmere." (भू० पृष्ठ XCVIII) [कुरान इतिहास का ग्रन्थ नहीं है और न इसको उन घटनाओं के विस्तार से प्रयोजन है जो मसीह के साथ, फांसी चढ़ाये जाने के पश्चात् घटित हुईं, किन्तु यह हमें बतलाता है कि उसे और उसकी मां को 'हरियाली भूमि तथा झरने वाली ऊँची भूमि पर पनाह दी गई,' (२३।५०) यह वर्णन काश्मीर पर लागू होता है]।

जिस आयत (२३।५०)के आधार पर मौलवी मुहम्मद अली ने यह दुर्ग खड़ा किया है। उस पर मौलाना अशरफ अली ने 'मुवाजह उल-कुरान' का यह उद्धरण दिया है:—"हजरत ईसा जब मां से पैदा हुए उस वक्त के बादशाह ने नजूमियों से सुना कि बनी-इस्राइल का बादशाह पैदा हुआ, वह दुश्मन हुआ उनकी तलाश में पड़ा। उनको बशारत हुई कि उसके मुलक से निकल जाओ, निकल कर मिश्र के मुल्क में गये। एक गांव के जमींदार ने हजरत मरियम

को अपनी बेटी कर रखा । जब हजरत ईसा जवान हुए उस के वतन का बादशाह मर चुका, तब फिर आये अपने वतन को वह गांव था टीले पर और पानी वहां का खूब था" ।

शाहजी ने भी प्रान्त में (हाशिया में) यह टिप्पण दिया है:—'इसमें वर्णित घटना मसीह के जन्मकाल की है न कि मसीह के फांसी चढ़ाये जाने के बाद की' । मौलवी मुहम्मद अली के इस अनर्थ का मूल है उनके गुरु मिरजा गुलाम अहमद कादियानी का एक लेख, जिस में उसने काश्मीर में ईसा की कब्र की कल्पना की । यदि मौलवी मुहम्मद अली का सारा ऐतिहासिक विवेचन इसी ढांचे का है, तो समझा जा सकता है कि वह सत्य की खोज से प्रेरित नहीं हैं । फिर 'मुवाजह उल-कुरान' में स्पष्ट श्रीमती मरियम जी का अपने पुत्र समेत मिश्र जाने का उल्लेख है, अतः मौलवी मुहम्मद अली का यह अक्षम्य झूठ है ।

मौलवी अब्दुल हकीम ने भी ईसा जी को क़ाश्मीर पहुँचाने की चेष्टा की है । किन्तु कोई प्रमाण नहीं दिया, केवल यह लिख दिया है कि हदीस में ऐसा वर्णन है, परन्तु न किसी हदीस का नाम लिया है और न कोई पता बताया है । उन्होंने तो ईसा जी को काश्मीर पहुँचाने की चेष्टा स्वयं अपने लेख के विरुद्ध की है । वह अपने भाष्य की तम्हीद (भूमिका) के १४वें पृष्ठ पर लिखते हैं:—"कुरान से जो खारिज किस्सा हैं ख्वाह यह तारीख के मुतअलिक हों या उलूमेतबिय्या कदीमा (प्राचीन भौतिक विज्ञानों) के मुतअल्लिक हों वह सच्चे हों तब क्या और झूठे हों तब क्या, तुम उनकी हिमायत (समर्थन) करके कुरान की तौहीन (अपमान) न करो" ।

किसी भी पुरातन भाष्यकार ने इस किस्सा के कुरान में होने का उल्लेख नहीं किया । अतः स्पष्ट ही ईसा जी का फांसी चढ़ाये जाने के पश्चात् काश्मीर जाने का किस्सा कुरान से खारिज है । इसलिये इस किस्से को, चाहे वह सच्चा भी हो, कुरान के भाष्य में देकर, उसकी हिमायत करना कुरान की तौहीन करना है । मौलवी अब्दुल हकीम इस अपराध के महान अपराधी हैं ।

कुरान और स्त्रियें

कुरान के अनुसार समाज में स्त्रियों के स्थान के संबन्ध में पर्याप्त मत-भेद है । एक पुरुष को चार स्त्रियों तक से विवाह की अनुमति देने और उन

परं पर्दा के वन्धन को डालने से स्त्री की जो स्थिति इस्लामी मत के अनुसार है, वह बहुत ही स्पष्ट हो जाती है। उस पर अधिक लिखने की आवश्यकता नहीं रहती।

किसी स्त्री को इल्हाम यदि कभी हुआ तो यह कोई विशेष बात नहीं क्योंकि मुसलमानी सिद्धान्त के अनुसार जड़ तथा पशुपक्षियों को भी इल्हाम होता है। अतः किसी स्त्री को इल्हाम होना उसकी कोई विशेषता नहीं।

कुरान में वर्णित पैगम्बरों के नाम हमने अतीव सावधानता एवं उत्सुकता से पढ़े, किन्तु उनमें एक भी स्त्री न मिली, इससे हमें अतीव निराशा हुई। खुदा ने पैगम्बर पूर्व कर्मानुसार तो निश्चित एवं नियत किये नहीं थे, जैसे विशेष विशेष अवसरों पर शिक्षा के लिये उसने पुरुष पैगम्बर भेजे, वैसे किसी एक स्त्री को भी पैगम्बर बना भेजता, तो इस्लाम की दृष्टि में सचमुच स्त्री की स्थिति अवश्य आदरणीय होती।

इसके विपरीत वैदिक धर्म में आम्भृणी वाक्, अपाला, घोषा आदि कई देवियां ऋषिकायें हुई हैं, जिन्होंने विशेष मन्त्रों के अर्थविशेष का साक्षात्-कार किया। वैदिक धर्म के अनुसार मनुष्यों में ऋषि पद बहुत ऊँचा है। जिस प्रकार एक पुरुष को ऋषि बनने का अधिकार है, स्त्री को भी उसी प्रकार ऋषि, महर्षि आदि पद प्राप्त करने का अधिकार है। वैदिक धर्म का यह उत्कर्ष स्पृहणीय है।

कुरान में पक्षपात

स्वामी जी का कुरान पर एक आक्षेप पक्षपात का है। कुरानशरीफ ५।२० में मूसा जी का एक वचन है जो उस ने अपनी बिरादरी के लोगों से कहा था:—"और तुम को वह चीज दी जो दुनिया जहान वालों में से किसी को नहीं दी" (मौलाना अशरफ अली का अनुवाद)। निस्सन्देह यह वचन मूसा जी का अपनी बिरादरी बनी-इस्राईल के प्रति है, किन्तु कुरानशरीफ में इसका होना सिद्ध कर रहा है कि खुदा मुसलमानों को संकेत से कह रहा है कि तुम मेरे विशेष हो। किसी समुदाय को विशेषता देना और अन्यों को विशेषता न देना पक्षपात है।

बाईबल की भजनसंहिता (जबूर) १४७।२० में कुछ ऐसे शब्द हैं:—

"किसी और जाति से उसने ऐसा बर्ताव नहीं किया और उसके नियमों को औरों ने नहीं जाना"।

चलते चलते एक बात हम कहना अत्यावश्यक समझते हैं। कुरान पर कदाचित् इतने आक्षेप न होते, यदि कुरान के भाष्यकार तनिक समझदारी से कार्य करते। देखिये, भावुकता के आवेश में आकर मौलवी सना-उल्ला ने क्या लिख दिया:—"आप की किताब कुरानकरीम ने तो आपकी लाईफ (सवानेह) को जिस तरह साफ और सरीह अल्फाज में बयान किया है उस का जिक्र अयां रा चि: बयां" (प्रथम भाग, पृष्ठ ११, स्तम्भ २)।

मौलवी सना-उल्ला जी ने कुरान में हजरत का जीवन चरित साफ और स्पष्ट शब्दों में पढ़ा है। कुरान में यदि पैगम्बर जी को खुदा ने इल्हाम दिया तो उसमें पैगम्बर जी के जीवन चरित के होने का क्या प्रयोजन ?

इसमें तो कोई सन्देह वा विवाद ही नहीं कि बाईवल में वर्णित प्रायः सभी पैगम्बरों का कुरान में उल्लेख है। उसके अतिरिक्त मौलवी मुहम्मद अली के अनुसार निम्नलिखितों का निर्देश भी उसमें है, हालांकि बाईवल में इनकी चर्चा नहीं है। १. हूद, २. सालिह, ३. लुक़मान, ४. खिज्र, ५. दारा प्रथम (जुल-करनैन)। मौलवी मुहम्मद अली इससे यह सिद्ध करना चाहते हैं कि कुरान-शरीफ बाईवल का पूरक एवं शोधक है।

इब्राहीम का दीन

हमें कुरान की एक प्रबल विशेषता यह दीखी है कि कुरानशरीफ में इब्राहीम के दीन पर बहुत बल दिया गया है। 'इब्राहीम' अंग्रेजी का 'Abraham' (अब्राह्म) वास्तव में 'ब्रह्मा' है। सामी भाषाओं में शब्द के आरम्भ में संयुक्ताक्षरों वाला शब्द प्रयुक्त नहीं होता। इसलिये 'ब्रह्मा' 'Abraham' या 'इब्राहीम' बना। आजकल भी अंग्रेजी भाषा के 'स्कूल' (School) को उत्तर-प्रदेश में 'इस्कूल' या 'अस्कूल' बोला जाता है। यह उर्दू आदि पर सामी भाषाओं (इब्रानी, अरबी आदि) का प्रभाव है। 'ब्रह्मा' हमारे यहां चारों वेदों के पूर्ण ज्ञानी की उपाधि है। ऐसा प्रतीत होता है कि अतिप्राचीन काल में कोई 'ब्रह्मा' वहां था जिस ने विशुद्ध वैदिक एकेश्वरवाद का प्रचार अरब में किया। हज़रत

मुहम्मद अपने को उसी के वंश का बताते और उसी के दीन का प्रचार अभीष्ट मानते हैं। यह एक अत्यन्त महत्वपूर्ण बात है।

नासिख मनसूख

कुरान के सम्बन्ध में एक 'नासिख मनसूख' (निषेधक निषिद्ध) की समस्या भी है। स्वामी दयानन्द से पूर्व मुसलमानों के सभी सम्प्रदाय ऐसा मानते थे कि कुरान की कुछ ऐसी आयतें हैं जिनका इल्हाम खुदा ने पहले दिया, किन्तु कालान्तर में कारण विशेष से उनको त्याज्य ठहराया। त्याज्य वा निषेध्य (निषिद्ध) को अरबी भाषा में 'मनसूख' कहते हैं, मनसूख करने वाली आयतों को 'नासिख' (निषेधक) कहते हैं। बहुत से मुसलमान विद्वान् जो 'नासिख-मनसूख' सिद्धान्त को मानते हैं, इसका मूलाधार कुरानशरीफ की अनेक आयतें बतलाते हैं। उनमें से एक आयत २।१०६ है। इसका अनुवाद प्रायः सभी एक सा करते हैं। इसका मौलाना अशरफ अली का अनुवाद यह है:— 'हम किसी आयत का हुक्म जो मौकूफ कर देते हैं या उस आयत को फरामोश कर देते हैं तो हम उस आयत से बेहतर या उस आयत की मिस्ल ही ला देते हैं"। इसी आयत का मौलवी अब्दुल हकीम का अनुवाद यह है:—'हम जो कोई आयत मनसूख करते या तर्क करते हैं तो उससे बेहतर या उसकी मिस्ल ले आते हैं'। यहां शाह रफी-उद्दीन ने 'मुवाजह-उल-कुरान' का यह उद्धरण टिप्पणी में दिया है:—'यह भी यहूद का ताऽन (आक्षेप) था कि तुम्हारी किताब में बाजी आयत फसख (निषिद्ध) होती है मगर अल्ला की तरफ से थी तो क्या ऐब देखा कि मौकूफ की। अल्ला ताला ने फरमाया ऐब न पहली में था न पिछली में, पर हाकिम हर वक्त जो चाहे करे'। कुरान की इस आयत तथा 'मुवाजह-उल-कुरान' से स्पष्ट सिद्ध हो रहा है कि कुरानशरीफ में अवश्य ऐसी कुछ आयतें हैं जो मनसूख हैं, निषिद्ध हैं। मौलवी सना-उल्ला ने इसका यह अनुवाद किया है:—"जो हुक्म हम बदलें या पीछे करें तो उससे अच्छा या उस जैसा लाया करते हैं"। इसमें मौलवी जी ने 'आयत' का अर्थ 'हुक्म' करके और 'नसख' का अर्थ 'हटावें' न करके 'बदलें करके स्वामी जी द्वारा किये गये आक्षेप को हटाना चाहा है। किन्तु अपने भाष्यमें उन्होंने इस आक्षेप के आधार को बनाये रखा हैं :—"यह हम पर उसकी मेहरबानी से है
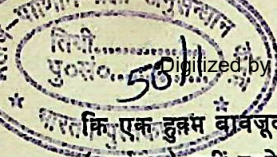
कि एक हुक्म बावजूद जरूरत बदलने (बदलने की आवश्यकता होने पर) दायम (सर्वदा) नहीं रहने देते बल्कि अगर बन्दों की ताकत उसको बर्दाश्त न कर सके तो बदल देते हैं। हमारे हां कायदा है कि जो हुक्म हम बदलें या कुछ मुद्दत के लिये उसे पीछे करें तो सवाब में उससे अच्छा या उस जैसा लाते हैं।" मौलवी सना-उल्ला ने इस पर यह टिप्पणी करके बात स्पष्ट कर दी है:—"बाज अहकाम (आदेश) जो शरीअते इस्लाम में मनसूख होते, जैसे तहवीले काबा, तो इस पर मुखालफीन (विरोधी) एतराज करते कि 'अभी तक उनके दीन का कुछ ठीक नहीं, बल्कि एक रोज एक हुक्म जारी है तो दूसरे रोज मनसूख है'। उनके जवाब में आयत नाजिल हुई थी" (प्रथम भाग पृष्ठ ९३)। मौलवी सना-उल्ला ने यह टिप्पणी हदीस बुखारी के आधार पर लिखी है। इन उद्धरणों से स्पष्ट सिद्ध है कि मुसलमान विद्वानों की परम्परा 'नासिख-मनसूख' सिद्धान्त को मानती है। किन्तु मौलवी मुहम्मद अली इसका विरोध करते हुए लिखते हैं:—"There is not a single report traceable to the Holy Prophet that any verse of the Holy Quran was abrogated." (भू० पृष्ठ XIX–XX) [पवित्र पैगम्बर की एक भी हदीस नहीं कि कुरानपाक की कोई आयत मनसूख है]। हमने आयतों का मनसूख होना कुरान के आधार से दर्शाया है किन्तु मौलवी मुहम्मद अली का साहस देखिये:— "The Quran does not say that any of its verses or communications is abrogated." (भू० पृष्ठ XX) [कुरान यह नहीं कहता कि इसकी कोई आयत या सन्देश मनसूख हुआ है]। इसके आगे मौलवी मुहम्मद अली ने स्वीकार किया है कि कुछ प्रामाणिक मुसलमान कुरान में मनसूख आयतों का होना स्वीकार करते हैं:—"It is only with the later commentators that we meet with the tendency to augment the number of verses thought to have been abrogated, so much so that some of them pronounced five hundred verses to have been abrogated." (भू० पृष्ठ XX)[यह केवल पश्चाद्भावी भाष्यकारों की बात है कि उनमें मनसूख आयतों की संख्या बढ़ाने की प्रवृत्ति पाई जाती है, यहां तक कि कुछ ने यह

कहा कि मनसूख आयतों की संख्या पांच सौ है] । इसके आगे कुरान के पुरातन महाविद्वान् 'सयूती' की सम्मति उद्धृत करके वह लिखते हैं कि सयूती स्वयं मनसूख आयतों की संख्या इक्कीस तक बताता है और वह इस विषय में मतभेद का होना स्वीकारता है । इसके पश्चात् 'फौजुल् कबीर' के लेखक देहली के विद्वान् शाह वली उल्लाह की सम्मति बतायी है कि उसके मतानुसार 'सयूती' की बताई मनसूख आयतों में से सोलह आयतें मनसूख सिद्ध नहीं की जा सकतीं ।

विपत्ति यह है कि मौलवी मुहम्मद अली को एक भी पुरातन भाष्यकार ऐसा नहीं मिला जो आयतों के मनसूख होने का सर्वथा विरोधी हो ।

मौलवी मुहम्मद अली तथा उससे पूर्ववर्ती सभी मुस्लिम विद्वानों की सर्वसम्मत मान्यता है कि कुरान ने अपने पूर्ववर्ती इंजील आदि के कुछ आदेशों को मनसूख कर दिया है । इसी आधार पर कुछ विचारशील मुसलमानों के मन में विचार आया कि जब खुदा ने पहले आदेशों में से कुछ को, कुरान के द्वारा, मनसूख कर दिया है तो अवश्य ही इसमें के भी कुछ आदेश मनसूख हैं । यह विचारधारा निरन्तर चली आती रही, अहमदियों ने पहले पहल इसका विरोध किया और इस विरोध का कारण स्वामी जी द्वारा की गई समीक्षा ही है ।

हमें किसी भी धर्मग्रन्थ में 'नासिख-मनसूख' का होना अच्छा नहीं लगता, अतः कुरानशरीफ में नासिख मनसूख होने का जो खण्डन करता है, हम उसका अभिनन्दन करते हैं ।

इस समय इस बात की बहुत बड़ी आवश्यकता है कि स्वामी दयानन्द के पश्चात् हुए कुरानभाष्यों का तुलनात्मक अध्ययन किया जाये, जिससे ज्ञात हो सके कि मुसलमानों ने हमारे समीप आने का कितना यत्न किया है ।

उद्धृतग्रन्थावली

१. अथर्ववेद, २. आल् इम्रान का भाष्य (सना-उल्ला-कृत), ३. इस्लामी अकायद (नूरुद्दीन-कारी-काश्मीरी-कृत), ४. उत्तरपुराण (जैनियों का), ५. ऋग्वेद, ६. कुरान पर टिप्पणियें (अंग्रेजी में मुहम्मद-अली-कृत), ७. कुरान-भाष्य (अब्दुल-हकीम-कृत), ८. कुरानभाष्य (अंग्रेजी में मुहम्मद-अली-कृत), ९. कुरानभाष्य (अशरफ-अली-कृत), १०. कुरानभाष्य(शाह-रफी-उद्दीन-कृत), ११. कुरानशरीफ का हिन्दी अनुवाद (कादियानी), १२. चर्चासमाधान, १३. जैन आगम (दलसुख-मालवणियां-कृत), १४. जैनन्यायदीपिका (दरबारीलाल-जैन-कृत), १५. जैन साहित्य में विकार (बेचरदास-कृत), १६. तफसीर-उल-कुरान-बिल कुरान (अब्दुलहकीमखां-कृत), १७. तफसीरे सनाई (सना-उल्ला-कृत), १८. बाईबल हिन्दी (१८५० का संस्करण), १९. भ्रान्तिनिवारण, २०. मनुस्मृति, २१. महापुराण (जैनियों के), २२. महाभाष्य (व्याकरण), २३. मुवाजह-उल-कुरान, २४. मुसद्दसे हाली, २५. यजुर्वेद, २६. वात्स्यायनभाष्य, २७. सत्यार्थप्रकाश, २८. सूर्यप्रकाश की समीक्षा, २९. स्थानांगवृत्ति, ३०. स्वमन्तव्यामन्तव्यप्रकाश, ३१. Bible (Authorised Version), ३२. Bible, Origin and Character of (पादरी-सण्डरलैण्ड-कृत), ३३. Bible (Revised Version), ३४. Outlines of Jainism (जगमन्दरलाल-जैन-कृत), ३५. What is Bible (प्रोफेसर-लेंड-कृत सन् १८८८ में प्रकाशित)

इन ग्रन्थों के अतिरिक्त निम्न ग्रन्थों का भी प्रयोग किया गया है यद्यपि वे उद्धृत नहीं किये गये :—

१. ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, २. कुरानभाष्य (उर्दू में मुहम्मद-अली-कृत), ३. चर्चासागर (जैन ग्रन्थ), ४. जैन-बौद्ध-तत्वज्ञान (शीतलप्रसाद-दिगम्बर-कृत), ५. दयानन्द-तिमिर-भास्कर, ६. दिवाकरप्रकाश, ७. प्रकरणरत्नाकर, ८. प्रभावक-चरित, ९. भास्करप्रकाश, १० सर्वदर्शनसंग्रह

सांख्यदर्शन के स
प्रमाणसहित खण्डन । सांख्यद
साथ अनेक दार्शनिक एवं ऐतिहासिक
श्री पं० उदयवीर जी शास्त्री को इस
पुरस्कार प्राप्त हो चुके हैं :—

१०००) सेठ हरजीमल डालमिया
१२००) उत्तर प्रदेश सरकार द्वार
१०००) राष्ट्रभाषा परिषद्, पटन
१२००) मंगलाप्रसादपारितोषिक,
प्रयाग द्वारा ।

यह ग्रन्थ २०×३०/८ साईज के
हुआ है, बढ़िया जिल्द, मूल्य ३०) रु० । पुस
के लिये उचित कमीशन दिया जाता है

जीवन की

श्री स्वा० वेदानन्दतीर्थ जी का स्वलि

सावित्री प्रक

वेद मन्त्रों के मौलिक व्याख्याता
द्वारा लिखित गायत्री मन्त्र की व्याख्या वे
अनेक तत्त्वों के प्रतिपादन सहित । मूल्य

स्वाध्याय

आर्य समाज के मूर्द्धन्य विद्वानों के

स्वाध्यायसन्दे

नित्य पाठ करने
सरल सुबोध एवं भाव
जी । मूल्य ३) रु